गीतांजली धारा...20

नारी गीतांजली

n0;nkrk

xFkkd & 218 **lLdj.k & 2013**

ifr;k & 1000 **eY; & 31@&#-**

lEidZ l= ,o ikfIrLFkku

1. धर्म दर्शन सेवा संस्थान, द्वारा – श्री छोटुलाल जी चित्तौड़ा, चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास, उदयपुर (राज.) 313001, मो. 9783216418
2. डॉ. नारायणलाल कछारा (सचिव) 55, रवीन्द्र नगर, उदयपुर (राज.) 313001, मो. 9214460622, फोन नं. 0294–2491422 E-mail : nlkacchara@yahoo.com

मेरी भावना एवं साधना

& vkpk;Z duduUnh

(राग :– सायोनारा सायोनारा......., तुम दिल की धड़कन में..........)

मेरी भावना मैं सतत भाता हूँ, भावना मेरी सदा पावन हो।
उदार सहिष्णु साम्य युक्त/(सह) हो, स्व–पर हितकारी मंगल हो।।ध्रु.।।

सनम्र सत्यग्राही सदा मैं बनूँ, राग–द्वेष मोह परे भी हो।
ईर्ष्या तृष्णा मद काम से रहित, सरल सहज सुशान्त हो।।

गुणग्राही मैं सदा ही बनूँ, दुर्गुणी से शिक्षा सदा लहूँ।
प्रतिस्पर्धा बिना विकास करूँ, आकर्षण–विकर्षण परे रहूँ।।

ख्याति पूजा लाभ से विरहित, अपना–पराया भेद से रिक्त।
स्व–पर–विश्वहित चिन्तन करूँ, लेखन वचन क्रिया सहित।।

अन्य से अविचल रहूँ मैं सदा, ज्ञाता–दृष्टा कर्त्ता मेरा रहूँ।
द्रव्य–क्षेत्र–काल सुयोग्य सहित, आहार–विहार–निवास करूँ।।

उपलब्धियों का सदुपयोग करूँ, विशेष उसे विकास करूँ।
दुरुपयोग कभी मैं न करूँ, अहंकार दीनता से दूर रहूँ।।

धीर–वीर–गम्भीर रहूँ सदा, चिन्तन समीक्षा सदा करूँ।
आत्मविशुद्धि में रत रहूँ सदा, स्वयं प्रामाणिक सदा रहूँ।।

आत्मोपलब्धि ही मेरा परम लक्ष्य, तदनुकूल ही मैं रत रहूँ।
उत्सर्ग/(निश्चय) अपवाद साधना सहित, लक्ष्य प्राप्ति हेतु आगे बढ़ूँ।।

(विजयनगर – 3/11/2012, मध्याह्न – 2:36)

साम्य एवं स्वावलम्बन हेतु मेरी साधना

(अध्यात्म अनुभवात्मक कविता)

& vkpk;Z duduUnh

(राग :– तुम दिल की धड़कन में......, छोटी–छोटी गैया....., आत्मशक्ति से...)

मेरे द्वारा मुझसे मुझे ही पाऊँ, अनन्तज्ञान सुख मुझमें पाऊँ।
परभाव समस्त को मैं दूर करूँ, इसी हेतु समस्त प्रयत्न करूँ।।ध्रु.।।

यथा ही बीज स्वयं अंकुर होता, मृदा जल आदि का निमित्त होता।
तथा ही मैं स्वयं में/(से, द्वारा) विकास करूँ, बाह्य निमित्तों को ग्रहण करूँ।।

तथापि निमित्तों का मैं दास न बनूँ, राग–द्वेष मोह निमित्तों से न करूँ।
यथाहि अग्नि निमित्ते खाना बनता, अग्नि रूप खाना नहीं बनता।।
तथाहि योग्य–अयोग्य निमित्त से, विकास करूँ मैं आत्म क्षेत्र में।
समता वीतरागता इसे कहते, इसी से ही साधु जन मोक्ष को पाते।।
अन्य के ज्ञान वैराग्य कम के कारण, राग–द्वेष मोह के ज्यादा के कारण।
फैशन–व्यसनों व पाप के कारण, उनसे न घृणा करूँ रहूँ उदासीन।।
समता में रहूँ तथा शिक्षा भी लहूँ, स्व–उपलब्धि का विकास करूँ।
अन्य यदि अनात्म/(विभाव) भाव बढ़ाते, मैं क्यों न आत्मिक/(स्वभाव) भाव बढ़ाऊँ।।
अनात्म भाव क्षणिक दुःखकारक, उसे बढ़ाने में लगे हैं अन्यान्य लोग।
आत्मभाव ही शाश्वतिक सुखकारक, अतः उसे बढ़ाना मेरा कर्त्तव्य/(परमधर्म)।
ख्याति पूजा लाभ से दूर मैं रहूँ, राग–द्वेष–मोह से विरक्त रहूँ।
गुण व शिक्षा ग्रहण सबसे करूँ, निस्पृह व समता से साधना करूँ।।
अन्य यदि मुझे प्रभावित करते, राग–द्वेष रूप में परिणमाते।
तब तो मैं उनका दास हो गया, साधु न होकर मैं यन्त्र हो गया।।
गति–स्थिति में धर्माधर्म समान, अन्य का सहयोग मैं लहूँ सामान्य।
तथाहि स्वावलम्बी सदा मैं रहूँ, 'कनक' साम्य भावना सदा मैं लहूँ।।
(विजयनगर – 29/10/2012, मध्याह्न – प्रायः 3:00)

मेरा परम अन्तिम लक्ष्य

(मरने के पहले मैं स्वयं को पाना चाहता हूँ)

& vkpk;! duduUnh

(राग :– तेरे प्यार का आसरा.......)
मरने के पहले मैं जानना चाहता हूँ, मेरा कौन है? और मैं कौन हूँ?
मैं क्या तन–मन प्राणवायु हूँ, मुझको मेरे द्वारा पाना चाहता हूँ।।ध्रु.।।
मैं क्या मानव समाज रूप हूँ, मेरा मौलिक रूप जीना चाहता हूँ।
मैं क्या किशोर युवक वृद्ध हूँ, सनातन सत्य रूप होना चाहता हूँ।।
कर्म संस्कार या जिनोम क्या मैं हूँ? सच्चिदानन्दमय होना चाहता हूँ।
जन्म–जरा–मरण क्या मेरा रूप है? सत्य–शिव–सुन्दर तो मेरा रूप है।।
सत्ता–सम्पत्ति क्या प्रसिद्धि मैं हूँ, मैं तो अमूर्तिक ज्ञानानन्द हूँ।
यथा आकाश नीला गुम्बदाकार न होता, तथा भौतिक स्वरूप मेरा न होता।।

जन्म–मरण–संयोग–वियोग आदि, पौद्गलिक रूप आधि–व्याधि–उपाधि।
आँख सम पर को मैं नहीं देखूँगा, स्व–प्रकाशी मैं हूँ मेरे द्वारा देखूँगा।।
गिद्ध पक्षी सम मैं न शव देखूँगा, ज्ञान चक्षु द्वारा मुझे मैं ही देखूँगा।
काम–क्रोध–मद–माया–लोभ नहीं हूँ, संकल्प–विकल्प हीन ज्ञानघन हूँ।।
आकर्षण–विकर्षण रिक्त रूप हूँ, धीर–वीर–गम्भीर साम्य रूप हूँ।
लौकिकाचार परे आत्मरूप हूँ, 'कनक' न मेरा रूप चिदानन्दमय हूँ।।
(बावलवाड़ा – 1/12/2012, रात्रि – 11:11)

अजीबो–गरीब मेरी प्रवृत्ति

& vkpk;! duduUnh

(राग :– इक परदेसी....., है अपना दिल....., तुम दिल की धड़कन....)
भिन्न–भिन्न कर्म–भिन्न–भिन्न भाव, भिन्न–भिन्न लक्ष्य होता जीवों में।
तदनुकूल रुचि तथाहि प्रकृति, प्रकृति अनुसार होती प्रवृत्ति।।ध्रु.।।
किसी की प्रवृत्ति सत्ता–सम्पति में होती, मेरी तो होती सत्य समता में।
किसी की प्रवृत्ति जन–मान में होती, मेरी तो होती मौन–एकान्त में।।
किसी की प्रवृत्ति ईर्ष्या–तृष्णा में होती, मेरी तो होती ज्ञान–वैराग्य में।
किसी की प्रवृत्ति राग–द्वेष में होती, मेरी तो होती वीतरागता में।।
किसी की प्रवृत्ति बाह्य आडम्बर में होती, मेरी तो होती ध्यान–अध्ययन में।
किसी की प्रवृत्ति पूजा–पाठ में होती, मेरी तो होती आत्मचिन्तन में।।
किसी की प्रवृत्ति राग–रंग में होती, मेरी तो होती तत्त्वचिन्तन में।
किसी की प्रवृत्ति कूट–कपट में होती, मेरी तो होती सीधा–सरल में।।
किसी की प्रवृत्ति परावलम्बन होती, मेरी तो होती आत्मावलम्बन में।
किसी की प्रवृत्ति पर–प्रतीक्षा में होती, मेरी तो होती स्वतः प्रवृत्ति में।।
कोई अकल बिना भी नकल करता है, मैं तो गुण ग्रहण सदा ही करता।
दोषी से भी घृणा नहीं करता हूँ, उसी से भी शिक्षा सदा ही लेता।।
वाचन से अधिक मैं चिन्तन करता हूँ, चिन्तन से करता हूँ आचरण।
उसी से अनुभव मैं प्राप्त करके ही, ग्राह्य–अग्राह्य का करता हूँ विश्लेषण।।
इसलिये मेरे काम अलग होते हैं, अन्य को लगता है अजीबो–गरीब।
'कनक'(नन्दी) तो इसी में व्यस्त–मस्त है, अन्य कोई मेरे से न होता करीब।।
(बावलवाड़ा – 2/12/2012, मध्याह्न – 2:38)

मेरे योग्य त्यजनीय करणीय एवं वरणीय

(मेरी प्रतिज्ञा साधना एवं उपलब्धि)

& vkpk;! duduUnh

(राग :– यमुना किनारे...., अच्छा सिला दिया....)

जिससे परम सत्य न मिले है, वह परम प्राप्य मेरा नहीं है।
जिससे चरम/(आत्मिक, शाश्वत, अमर) सुख न मिलता, वह मेरा अन्तिम लक्ष्य नहीं है।।ध्रु.।।
जिससे आत्मा की शुचिता न होती, वह धार्मिक क्रिया नहीं चाहिये।
जिस साधना से समता नहीं बढ़ती, वह साधना नहीं चाहिये।।
अपेक्षा उपेक्षा प्रतिक्षा युक्त, राग–द्वेष ईर्ष्या अहंभाव युक्त।
दबाव प्रलोभनमय युक्त, दीन–हीन–अहंभाव युक्त।।(1)
ख्याति पूजा लाभ मोह सहित, याचना द्वन्द्व व संक्लेश युक्त।
संकल्प–विकल्प व भ्रम सहित, कार्य न होगा मुझसे ज्ञात।।
भेदभाव मैं करूँगा नहीं, संकीर्ण हठग्राही बनूँगा नहीं।
निन्दा चुगली करूँगा नहीं, खोटे/(छोटे) भाव भरूँगा नहीं।।(2)
आकर्षित–विकर्षित बनूँगा नहीं, दूसरों की बातों में पडूँगा/(फसूँगा) नहीं।
अन्य की कुचिन्ता करूँगा नहीं, खोटी प्रतिज्ञा करूँगा नहीं।।
वाद–विवाद में पडूँगा नहीं, कुतर्क–वितर्क करूँगा नहीं।
वैर–विरोध भी करूँगा नहीं, सत्य साम्य शान्ति छोडूँगा नहीं।।(3)
आलस्य प्रमादी बनूँगा नहीं, ध्यान अध्ययन छोडूँगा नहीं।
आडम्बर प्रपंच रचूँगा नहीं, अनुभव विपरीत चलूँगा नहीं।।
द्रव्य–क्षेत्र–काल–सुभाव युक्त, निश्चय–व्यवहार नयसहित।
उत्सर्ग–अपवाद क्रिया सहित, आचरण करूँगा समता युक्त।।(4)
बाह्य क्रिया करूँगा शक्ति युक्त, अन्तरंग साधना समता युक्त।
तन–मन आत्मा स्वास्थ्य योग्य, आहार–विहार–निवास युक्त।।
धन–जन–मान का नहीं लोभ, आत्मविशुद्धि का हो लाभ।
निस्पृह सन्तोष हो ज्ञानानन्द, 'कनक' का लक्ष्य निजानन्द।।(5)

(बावलवाड़ा – 4/12/2012, रात्रि – 10:25)

पापी–दोषी से भी मैं क्यों नहीं करता हूँ घृणा?

& vkpk;! duduUnh

(राग :– छोटी–छोटी गैया....., यमुना किनारे.....)

अन्य के कारण मैं पापी क्यों बनूँ, राग–द्वेष करके दुःखी क्यों बनूँ।
दूसरों के दोषों से दोषी क्यों बनूँ, दूसरों से विचलित मैं क्यों बनूँ।।ध्रु.।।
सर्व जीवों में मैत्री भाव मैं रखूँ, गुणी जीवों से प्रमुदित मैं बनूँ।
दुःखी जीव प्रति कृपाभाव मैं रखूँ, पापी जीव प्रति साम्यभाव मैं रखूँ।।
मैत्री भावना से उदारता भी आती, पीड़ा देने की भावना दूर भी होती।
प्रमुदित होने से सुख मिलता, पाप दूर होता व पुण्य मिलता।।(1)
कृपाभावना से संवेदना बढ़ती, पर दुःख दूर हेतु भावना होती।
साम्यभाव से राग–द्वेष न होते, नानाविध पापों के बन्ध न होते।।
राग–द्वेष से संक्लेश भाव भी होते, जिससे तन–मन अस्वस्थ (भी) होते।
मानसिक अस्थिरता खूब बढ़ती, मानसिक अशान्ति की वृद्धि भी होती।।(2)
क्रोध से ओजशक्ति नष्ट भी होती, जिससे जीवनशक्ति में क्षीणता आती।
ज्ञानतन्तु नाश से बुद्धि नशती, शालीनता सुन्दरता शान्ति नशती।।
ईर्ष्या से पित्त की वृद्धि भी होती, इन्द्रियों की तेजस्विता विनष्ट होती।
लीवर खराबी तथा पथरी होती, दूसरों की अच्छाई न अच्छी लगती।।(3)
ईर्ष्या घृणा द्वेष से लाभ न होता, दोषी न सुधरता स्वयं दोषी हो जाता।
ईन्धन से अग्नि कभी शान्त न होती, ईन्धन अभाव से अग्नि बुझती।।
नवकोटी से राग–द्वेष न करूँ, स्व–पर को कष्ट दे पापी न बनूँ।
शान्तिप्राप्ति 'कनक' का परम ध्येय, ध्येय में न बाधक बनाऊँ ज्ञेय।।(4)

(बावलवाड़ा – 2/12/2012, रात्रि – 10:53)

मेरे (आ. कनकनन्दी की) स्वास्थ्य की समस्यायें एवं समाधान

& vkpk;! duduUnh

(राग :– आत्मशक्ति से ओतप्रोत......)

मेरे स्वास्थ्य के बारे में, मैं कर रहा हूँ वर्णन।
जिससे मैं सतर्क रहूँ, स्वास्थ्य रक्षा के कारण।।ध्रु.।।

शारीरिक स्वास्थ्य से मैं रखूँ, मानसिक स्वास्थ्य।
दोनों स्वास्थ्य के बल पर साधूँ, आध्यात्मिक स्वास्थ्य।।
शारीरिक प्रकृति मेरी है, स्वाभाविक पित्त प्रकृति।
स्वाध्याय हेतु रात्रि जागरण से, बढ़ता बहु पित्त।।(1)
मेरे लक्ष्य अनुभव कार्य, यथा अन्य से भिन्न।
तथा मेरा आहार–विहार, निवास अन्य से भिन्न।।
इसलिये मुझे अन्य लोग भी, समझ न पाते शीघ्र।
इससे कुछ समस्या होती, समाधान न होता शीघ्र।।(2)
गरमी गन्दगी बदबू से बढ़ता, और भी अधिक पित्त।
रूखा तीखा गरम भोजन, खाने से बढ़े पित्त।।
इसी से शरीर गरम रहे, पसीना आवे विशेष।
चक्कर आवे उल्टी होवे, पिलीया हैजा प्रकोप।।(3)
धूली धुआँ गैस की बदबू, गैस से बना भोजन।
अधकचा अधपका भोजन, अक्रम दिया भोजन।।
मिर्ची बेसन उड़द मक्का, तेल मैदा भोजन।
मेरे लिये है अयोग्य जानो, जो पित्तकर भोजन।।(4)
सर्द–गर्म भोजन व वातावरण से, होती है सर्दी–खाँसी।
समताप भोजन व वातावरण से, ठीक होती सर्दी–खाँसी।।
स्वच्छ प्राकृतिक वातावरण से, समशीतोष्ण परिस्थिति।
स्निग्ध मधुर सुपरिपक्व भोजन से, बढ़े न पित्त प्रकृति।।(5)
दूध घी मुनक्का बादाम नारियल पानी, मीठे फल व ककड़ी।
हलुआ खीर पूड़ी पराठा व, केले परवल की सब्जी।।
सुबह शाम परिभ्रमण, प्राणायाम व योगासन।
शान्त स्वच्छ एकान्त स्थान में, निवास व यह काम।।(6)
थंडा तेल की मालिश थंडा, पानी से हो स्पंज।
योग्य है गरम किया हुआ थंडा, पानी दूध व भोजन।।
शोर–शराबा लड़ाई–झगड़ा, अयोग्य कार्य व भाव।
मेरे लिये है सर्वथा अयोग्य, ईर्ष्या–द्वेष क्लेश भाव।।(7)
शरीर माद्यं खलु धर्म साधन, तन–मन आत्मा के स्वास्थ्य।
उत्तम शरीर संहनन मन से, सधता समग्र स्वास्थ्य।।

शरीर मन से परे है, आध्यात्मिक मेरा स्वास्थ्य।
उस स्वास्थ्य हेतु 'कनकनन्दी', रखता तन–मन स्वस्थ।।(8)

(विजयनगर – 19/11/2012, प्रातः – 8:18)

धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध सेवा संस्थान का विश्व को आह्वान

& vkpk;! duduUnh

(राग :– तुम दिल की धड़कन में..., चौपाई, नरेन्द्र छन्द)
धर्म–दर्शन–विज्ञान/(सेवा) संस्थान, स्वागत आपका करता है।
शोध–बोध सेवा के हेतु, आपका आह्वान करता है।।ध्रु.।।
धार्मिक आस्था दर्शन भाव/(चिन्तन) से, वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में।
शोध–बोध सेवा के द्वारा, स्व–पर विश्व के हित में।।
अन्धविश्वास नहीं है धर्म, तर्क–वितर्क ही नहीं दर्शन।
भौतिक ज्ञान ही नहीं विज्ञान, सत्य–साम्य–सुखमय हो तीनों।।(1)
वस्तु स्वभाव धर्म तो होता, सुख प्राप्ति का मार्ग जो होता।
स्व–पर–विश्व हितकर होता, सत्य–अहिंसा–चारित्र होता।।
तात्विक चिन्तन दर्शन होता, सत्य परिज्ञान उपाय होता।
धर्माधर्म का विवेक होता, हिताहित का विज्ञान होता।।(2)
आधुनिक विज्ञान भौतिक होता, भौतिक तत्त्व का शोध करता।
सत्य ज्ञान हेतु यत्न करता, प्रकृति का शोध/(बोध) करता।।
धर्म का स्वरूप व्यापक होता, दर्शन–विज्ञानमय भी होता।
धर्म तो इससे परे भी होता, भौतिक–बौद्धिक परे भी होता।।(3)
तीनों के योग्य समन्वय से, विश्व हितकारी होते विशेष।
धर्मान्धता हटे कुतर्क छूटे, भौतिकता का बन्धन टूटे।।
तीनों यदि संकीर्ण विकृत होते, परस्पर के विरोधी होते।
स्व–पर अहितकर भी होते, अमंगलकारी विश्व के होते।।(4)
अतः समन्वय होना विधेय, दोनों संस्था का यह भी ध्येय।
विश्व हित हेतु दोनों सक्रिय, कनकनन्दी का यह भी ध्येय।।
दोनों संस्थान विश्व के होते, विश्व के लिये कार्य करते।
विश्व के द्वारा पोषित होते, वैश्विक आह्वान स्वागत करते।।(5)

(विजयनगर – 24/10/2012, रात्रि–12:03)

स्वागत एवं आह्वानकर्त्ता

1. धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान (बड़ौत–उत्तरप्रदेश)
2. धर्म–दर्शन–विज्ञान सेवा संस्थान (उदयपुर–राजस्थान)

शाखायें :– बड़ौत, गाजियाबाद, उदयपुर, कोटा, मुम्बई, अमेरिका आदि।

शुभ आशीर्वाद :– गणाधिपति गणधराचार्य प. पू. श्री कुन्थुसागर जी गुरुदेव

प्रेरणा एवं मंगल आशीर्वाद :– वैज्ञानिक धर्माचार्य प. पू. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

आपका हार्दिक स्वागत करता है।

☺☺☺

☯ कृतिकार ☯

परम पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री
कनकनन्दी जी गुरुदेव

☯ अक्षरसज्जा ☯

पूज्या आर्यिका श्री सुनीतिमती माताजी
पूज्या आर्यिका श्री सुविधेयमती माताजी

☯ सहयोगी ☯

परम पूज्य मुनिश्री सुविज्ञसागर जी गुरुदेव
परम पूज्य मुनिश्री आध्यात्मनन्दी जी गुरुदेव
पूज्या आर्यिका श्री सुवत्सलमती माताजी
पूज्या आर्यिका श्री सुनिधिमती माताजी
पूज्या क्षुल्लिका श्री सुवीक्षमती माताजी
ब्र. सोहनलाल जी देवड़ा

विषयानुक्रमणिका

क्रम	गीत व लेख	पृष्ठ
1.	मेरी भावना एवं साधना	2
2.	साम्य एवं स्वावलम्बन हेतु मेरी साधना	2
3.	मेरा परम अन्तिम लक्ष्य	3
4.	अजीबो–गरीब मेरी प्रवृत्ति	4
5.	मेरे योग्य त्यजनीय करणीय एवं वरणीय	5
6.	पापी–दोषी से भी मैं क्यों नहीं करता हूँ घृणा	6
7.	मेरे (आ. कनकनन्दी की) स्वास्थ्य की समस्यायें एवं समाधान	6
8.	धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध सेवा संस्थान का विश्व को आह्वान	8
	नारी गीतांजली	
9.	सरस्वती / जिनवाणी वन्दना (आगम एवं अध्यात्मनिष्ठ कविता)	11
10.	नारी तेरे रूप अनेक	11
11.	भोली मेरी माँ	12
12.	मैं हूँ अकाजकारी गृहिणी (गृहिणी की आत्मकथा एवं आत्मव्यथा)	13
13.	भारतीय नारी की गरिमावस्था व पतितावस्था	15
14.	आधुनिक पढ़ी–लिखी रानी	16
15.	मातृशक्ति उद्धारक शक्ति बने न कि संहारक	17
16.	अच्छी माँ का यथार्थ मूल्यांकन	18
17.	सुपुत्री के विभिन्न रूप	19
18.	सच्ची सास का स्वरूप	20
19.	सबसे अधिक तनावयुक्त भारतीय नौकरपेशा महिला	21
20.	पावन व पतिता नारी	22
21.	स्व माता–पिता से बच्चों की करुण प्रार्थना	23
22.	जैनधर्म एवं नारी	25
23.	सर्वोदय	63
24.	श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी भगवन्त अनमोल रतन–धन–खान	73
25.	महान् वैज्ञानिक गुरुश्रेष्ठ आचार्य श्री कनकनन्दी जी की आरती	74
26.	पाश्चात्य के विकास व भारत के पिछड़ापन के कारण	75
27.	न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू के लिये प्रेषित पत्र	76
28.	आचार्य श्री के शिष्यों द्वारा जैनधर्म की प्रभावना.....	77

सरस्वती/जिनवाणी वन्दना

(आगम एवं अध्यात्मनिष्ठ कविता)

(वैश्विक सत्य–शान्ति की प्रवक्ता सरस्वती माता की वन्दना)

(राग :– बंगला–उड़िया, चाँद सी महबूबा..., बहुरागीय वन्दना)

जननी! जननी! जननी! जननी! वन्दे शारदे जननी/(हे जिनवाणी)।
तीर्थंकर सुता पवित्र गात्रा, ज्ञान पयोधरा पावन माता।।
गणधर ऋषि मुनि सेविता माता, देव–विद्याधर पूजिता माता।
राजा–महाराजा चक्री वन्दिता, विद्वान् कवि नरगण पूजिता।।
पशु–पक्षी सुदृष्टि वन्दिता, स्वर्ग–मोक्षदायिनी भारती माता।
ज्ञान–विज्ञान से अलंकृत गात्रा, शिक्षा संस्कृति से शोभिता माता।।
भाषा गणित कला मण्डिता, आध्यात्मिक ज्ञान से पावन माता।
अनेकान्तमय आपका आत्मा, स्याद्वाद वाणी से आप शोभिता।।
प्रमाण नय निक्षेप शोभिता, वस्तु स्वरूप की आप प्रणेता।
द्रव्य गुण पर्याय की आप ज्ञाता, उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहिता।।
मोक्षपथ की आप हो सुज्ञाता, मार्गणा गुणस्थान सहिता।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रदात्री, भव्य कमल की आप सावित्री/
(भव्य कमल की विकासिनी दात्री)।।
विश्वहितंकरी हे जगज्जननी!, कनकनन्दी की ज्ञानदायिनी।
विश्व प्रबोधिनी सरस्वती माता, वैश्विक शान्ति की आप प्रवक्ता।।
विश्व समस्या की समाधानकर्त्री, शत–शत वन्दन हे जगन्माता!!

(विजयनगर – 22/10/2012, मध्याह्न – 12:32)

नारी तेरे रूप अनेक

(राग :– गंगा तेरी धारा अमृत.....)

नारी तेरे रूप अनेक, वचने कहि न जाये।
माता सुता सहोदरी भार्या, आर्यादि रूप में होय।।ध्रु.।।
माता तू ही जन्मदात्री, नर–नारी तीर्थेश तक।
पालन–पोषण शिक्षणदात्री, महान् मानव तक।।
जन्म देने से आप हो माता, सेवा से आप धात्री/(दासी)।
रक्षक रूप से आप हो दुर्गा, शिक्षा देने से शिक्षयित्री।।
तेरा रूप ही सती सावित्री, गृहलक्ष्मी विद्या/(सरस्वती) माता।

भाग्यलक्ष्मी धनलक्ष्मी/(मोक्षलक्ष्मी), श्री ह्री धृति कीर्ति माता।।
वधू–नारी–स्त्री–प्रमदा–विलया–युवती–योषा।
अबला–कुमारी–महिला–ललना व्युत्पत्तिपरक संज्ञा।।
गृहिणी व ब्रह्मचारिणी, क्षुल्लिका आर्यिका माता।
विदुषी लेखिका कवियित्री, वीरांगना गणिनी माता।।
तेरी संज्ञा से सम्बोधित, होती विद्या बुद्धि शक्ति।
धन वैभव विजय भाग्य, राज्य व श्रद्धान मुक्ति।।
विकृत रूप भी तेरे अनेक, मन्थरा सूर्पणखा वेश्या।
कलहकारिणी ज्वालामालिनी, रणचण्डी क्रूरा दुष्टा।।
सती–माता–आर्यिका–क्षुल्लिका, तेरे हैं पूज्य रूप।
मन्थरा सूर्पणखा कुशील वेश्या, तेरे अपूज्य रूप।।
नारी की अरि नारी तू भी हो, कन्या भ्रूण हत्यारिणी।
ईर्ष्या द्वेष व कलहकारिणी, दहेज हत्यारिणी।।
इसी रूप में तू ही डाकिनी, शाकिनी ज्वालामालिनी।
सुख–शान्ति व गृहविदारिणी, चण्डी–मुण्डी पाखण्डी।।
विकृति त्यागो संस्कृति भजो, बनो है सती आर्या।
स्व–पर–विश्वकल्याण करो, कनक से शुभाशीष।।

(बावलवाड़ा – 4/12/2012, रात्रि – 2:43)

भोली मेरी माँ

(राग :– पूछ मेरा क्या नाम रे.....)

भोली मेरी माँ है, अनपढ़ गँवार है।
गाँव में जन्मी, गाँव में पली, गाँव में रहने वाली है।।ध्रु.।।
चमक–दमक फैशन–व्यसन, नहीं जानने वाली है।
अंग्रेजी बोलना लेक्चर झाड़ना, आधुनिकता से कोरी है....भोली मेरी माँ....।।(1)
कूट–कपट मायाचारी ढोंग, गप्पाष्टक/(पाखण्ड) से खाली है।
आलस प्रमाद कामचोरी से, सदा सर्वदा कोरी है....भोली मेरी माँ....।।(2)
प्यारे दुलारे खाना खिलाये, अमृत सम भोजन है।
ऐसा भोजन कहाँ खिलाये, पढ़ी–लिखी मम्मी रे....भोली मेरी माँ....।।(3)
सुबह–सुबह गैया मैया का, दूध भी दुहने वाली है।
धारोष्ण दूध रोज पिलाये, कामधेनु मनहारी है....भोली मेरी माँ....।।(4)

हमें प्यार दुलार करे, स्पर्श अमृत बोली से।
ऐसा कहाँ नसीब होता है, आधुनिक मम्मा से....भोली मेरी माँ....।।(5)
रोग शोक दुःख में देती, दवा सेवा सान्त्वना।
ऐसा कहाँ कर पाती है, डिग्री धारी मम्मा....भोली मेरी माँ....(6)
गृह कार्य व बाग बगीचा, कृषि करने वाली है।
सबके भरण पोषण वाली, तो भी गँवारू वाली है....भोली मेरी माँ....(7)
परिवार का सार संवार, रक्षा करने वाली है।
तो भी न होती कामकाजी, पैसा न लाने वाली है....भोली मेरी माँ....(8)
हीरोईन न बनना जाने, महामूर्खा है मॉडल में।
तो भी मेरी माता सम, कोई नहीं है मण्डल में....भोली मेरी माँ....(9)
सभा समिति क्लब फंक्शन में, भाषण न करने वाली है।
तो भी माँ के अनुभव सामने, कौन टिकने वाली है....भोली मेरी माँ....(10)
मेरी माँ कामधेनु या चिन्तामणी रत्न है।
हर काम को बिना सिखाये, करती सदा पूर्ण है....भोली मेरी माँ....(11)
मेरी माँ से न करो घृणा, अहिल्या सम माँ है।
अभिशाप से करो न कलंकित, आधुनिकता की शंका से....भोली मेरी माँ....(12)

मैं हूँ अकाजकारी गृहिणी

(गृहिणी की आत्मकथा एवं आत्मव्यथा)

(राग :– होठों पे सच्चाई.....)

मैं हूँ अकाजकारी गृहिणी, घर के काम से फुरसत नहीं।
खाना बनाती बच्चे पालती, तो भी कहे कुछ काम नहीं।।ध्रु.।।
मैं न जाती ऑफिस क्लब, मीटिंग व किटी पार्टी में,
सद्‌गृहिणी के कर्त्तव्य पालने से, अवकाश नहीं दिन रात में,
ब्रह्ममुहूर्त में उठकर मैं नित्य कर्म, सदा ही करती हूँ,
प्रभु स्मरण शौच स्नान, पूजा पाठ भी करती हूँ।।(1)
शुद्धतापूर्वक आहार बनाके, आहारदान मैं करती हूँ,
परिवारजन व सास–ससुर को भोजन कराकर खाती हूँ,
गृहपालित गाय–भैंस का, भरण–पोषण भी करती हूँ,
दूध दुहना दही जमाना, घी भी मैं बनाती हूँ।।(2)
घर की सफाई रोगी की सेवा, अतिथिसत्कार मैं करती हूँ,

बाग–बगीचा खेतों का काम, आटा भी पीसा करती हूँ,
वस्त्र धोना घर पोतना, बर्तन मांजना सदा काम है,
पानी लाना सब्जी लाना, घर सम्भालना काम हैं।।(3)
मध्याह्न बेला में मन्दिर जाकर, साधु से पढ़ना कर्त्तव्य है,
प्रवचन सुनना समाधान करना, धर्म को जानना कर्त्तव्य है,
सन्ध्या से पूर्व खाना बनाकर, खिलाना पिलाना काम हैं,
बर्तन मांजकर घर सम्हारकर, मन्दिर जाना काम हैं।।(4)
आरती वन्दना प्रार्थना प्रवचन, प्रश्नमंच में भाग लेती हूँ,
आर्यिका आदि की वैयावृत्त कर, घर जा शयन करती हूँ,
दिन रात में सोलह घण्टे भी, मैं हाड़तोड़ काम करती हूँ,
माता प्रबन्धक दासी तक, समस्त काम सदा करती हूँ।।(5)
तो भी मुझे वेतन में, एक भी पैसा नहीं मिलता है,
चतुर्थ श्रेणी के नौकर सम, मुझे न सम्मान मिलता है,
भारत में तो वह ही महति जो, फर्जी भी डिग्रीधारी होती है,
फैशन करती व्यसन करती, नौकरी पार्टी में जाती है।।(6)
गॉगल्स पहनती लिप्स्टिक लगाती, हिंगलिश भाषा बोलती है,
हाई हिल सैंडल पहनकर, फर्राटे में गाड़ी चलाती है,
भले घर में खाना न बनाती, होटल में खाना खाती है,
धाई के द्वारा बच्चों को पालती, बोतल का दूध पिलाती है।।(7)
सास–ससुर की आज्ञा न पालती, पति से स्व काम कराती है,
क्लब पार्टी से देर रात आती, सिनेमा व घूमने जाती है,
तीर्थंकर साधु–साध्वी के बदले, नट–नटी को आदर्श मानती है,
उन्हीं का गाना पहनना उनका, उनका स्टाईल जो करती है।।(8)
ब्राह्मी सुन्दरी गार्गी सीता, आउट ऑफ डेट हो गई,
अश्लील हुल्लड़ नृत्य गानवाली, हीरोईन अप टु डेट हो गई,
इसलिये तो आज इण्डिया देश में, पढ़े लिखे अधिक भ्रष्ट हुए,
माता मातृभूमि मातृभाषा रहित, भारतीय संस्कृति से दूर हुए।।(9)
जीजाबाई तीर्थंकर माता, भक्त मीरा क्या कामकाजी थी,
तो भी क्या वे महति न हुई? मेरी अभी क्या कसर हुई,
अभी हे भारत! नौकरवृत्ति छोड़ो, आत्मगौरव को स्मरण करो,
'कनकनन्दी' के माध्यम से अभी, मेरे महत्त्व को पहचानो।।(10)

भारतीय नारी की गरिमावस्था व पतितावस्था

(राग :– है यही समय की पुकार..., सुनो सुनो हे दुनियाँ वालो!...)

सुनो सुनो हे भारतीय नारी! सुनो हे तेरी गौरव गाथा।
तुम हो आर्या सुपुत्री तुम, उभयकुल की दीपिका सुता।।ध्रु.।।
अनेक रूप तेर जन्मे, कन्या माता (भार्या) आर्या बहिन,
विदुषी सती संस्कारदात्री, लेखिका धात्री पोषणकर्त्री,
तुम से जन्मे तीर्थंकर बुद्ध, ऋषि मुनि ज्ञानी सती सावित्री,
तत्त्ववेत्ता व दार्शनिक वीर, राजा–महाराजा सकल चक्री।।(1)
अनेक तेरे प्रसिद्ध नाम, ब्राह्मी सुन्दरी सीता सावित्री,
गार्गी लीलावती चन्दनामती, चेलना मैनासुन्दरी सती,
मॅडम क्यूरी मदर टेरेसा, नाइटिंगल जीजाबाई,
निवेदिता व कस्तूरीबाई, सरोजिनी नायडू लक्ष्मीबाई।।(2)
तेरे से अनेक रूपक बने, लक्ष्मी सरस्वती सती दुर्गा,
तेरा विशेषण पहले आवे, मात–पिता भगिनी–भैया,
जन्मस्थान को मातृभूमि कहे, स्वभाषा है मातृभाषा,
''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' कहती देव भाषा।।(3)
''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' आर्य भाषा,
गृहलक्ष्मी धनलक्ष्मी सरस्वती, रणचण्डी कहे संस्कृत भाषा,
इसलिये तो भारत रहा कभी, विश्वगुरु व समृद्ध देश,
चार आश्रम से युक्त भारत, सामाजिक रचना से महान् देश।।(4)
दीर्घ परतन्त्रता के कारण, उपरोक्त गरिमा विकृत हुई,
शिक्षा दीक्षा संस्कारविहीन, भारतीय महिला विकृत हुई,
स्वतन्त्र भारत में तो और भी, विकृतियाँ विकसित हुई,
पाश्चात्य अन्धानुकरण के कारण, फैशन–व्यसन में वृद्धि हुई।।(5)
पढ़ाई नौकरी किटी पार्टी व, टीवी सीरियल ने जहर घोला,
टेंशन फोबिया चिढ़चिढ़ापन, अश्लील हरकतों को बल मिला,
इन कारणों से सबसे अधिक, टेंशनयुक्त भारतीय नारी,
भ्रूणहत्या से आत्महत्या तक, फल भोग रही आधुनिक नारी।।(6)
जो वृक्ष स्वमूल से कट जाये, उसकी सुरक्षा वृद्धि न होती,
वैसा ही जो स्व–संस्कृति से, कट जाये उसकी उन्नति कभी न होती,

परिवार सेवा गुरु सेवा, शील सदाचार से जो होती दूर,
उसका पतन वैसा होता, जैसे वृक्ष के मूल से दूर।।(7)
साक्षर के साथ संस्कार पालो, आधुनिकता के साथ शील,
प्रगति के साथ विनम्र बनो, दृढ़ता से रहो पापों से दूर,
कुरीति त्यागो नैतिक बनो, मान–मर्यादा का करो पालन,
गरिमामय जीवन जीयो, 'कनकनन्दी' का है आह्वान।।(8)

आधुनिक पढ़ी–लिखी रानी

(आधुनिकता से नारी के लिये सुविधा एवं समस्यायें)

(राग :– हे गुरुवर धन्य हो तुम..., होठों पे सच्चाई...)

आधुनिक पढ़ी–लिखी रानी है, कौन भरेगी अब पानी है।
नदी भी आ गई किचन में, डिनर खाते हैं होटल में।।ध्रु.।।
आटा मसाला न पीसती है, पैकेट में रेडिमेड लाती है।
सड़े गले मिलावट मिलते, चमक–दमक पैकिंग भाती है।।(1)
पानी छानना नहीं आता है, बिसलरी वॉटर जो पीती है।
दश रुपयों में मिले एक लीटर, जिससे लगे स्टेटस सिंबल।।(2)
बाइक से वाकिंग जाती है, मन्दिर पैदल न जाती है।
किटी पार्टी क्लब में जाती, आहारदान न करती है।।(3)
टीवी सीरियल देखती है, स्वाध्याय प्रवचन न जाती है।
फैशन से शरीर सजाती है, मन का मंजन न करती है।।(4)
ब्यूटी पार्लर जाती है, बड़ों की सेवा न करती है।
गप्प में समय बिताती है, बच्चों को संस्कार न देती है।।(5)
लिप्स्टिक होंठ में लगाती है, खाना बनाना न जानती है।
नेलपॉलिश नखों में लगाती है, घर की सफाई न आती है।।(6)
अप टु डेट मॅडम बनती है, ज्ञान–विज्ञान न जानती है।
हाईहिल सेंडल पहनती है, स्वास्थ्य रक्षा न जानती है।।(7)
प्रेमी के साथ घूमने जाती, अनैतिकपूर्ण काम करती।
इससे उसे शर्म न आती, अच्छे कामों में शर्माती है।।(8)
इन कारणों से होती निष्क्रिय, आलस्य प्रमाद छा जाता है।
व्यवहार ज्ञान सदाचार बिना, बुद्धि का विकास न होता है।।(9)

हिताहित ज्ञान पुण्य पाप बिना, महान् विचार न होता है।
इसके बिना सुख–शान्तिमय, जीवन कभी न बनता है।।(10)
तनाव रहता प्रेम न मिलता, सहयोग भी न मिलता है।
एकली होती उदास रहती, खोटा (छोटा) विचार आता है।।(11)
मोटापा आता शुगर लाता, दिल भी कमजोर होता है।
हड्डी भी होती कमजोर भंगुर, शरीर होता रोग का घर।।(12)
इत्यादि से वह दुःखी भी होती, झगड़ा संक्लेश निन्दा होती।
तलाक देती या घर से जाती, आत्महत्या से जीवन देती।।(13)
इसलिये बहनों सम्भल जाओ, शिक्षित बनो आदर्श बनो।
मूल को सींचो विकास करो, कनकनन्दी का आह्वान सुनो।।(14)

मातृशक्ति उद्धारक शक्ति बने न कि संहारक

(राग :– हे वनगिरि! हे लतागिरि!.....)
हे मातृजाति! हे मातृशक्ति!
सुनो गरिमा तेरी जाति/(नारी जाति) की..., हे मातृजाति!...।।ध्रु.।।
तुझसे जन्म लेते, तीर्थंकर व बुद्ध, रामकृष्ण सहित समस्त ही मानव।
तू ही ब्राह्मी सुन्दरी, चन्दना सीता गार्गी, प्राचीनकाल से ही अनेक सती साध्वी।।
अनेक वीरांगनायें, तेरी जाति में जन्मी, दुर्गा लक्ष्मीबाई व अहिल्याबाई जन्मी।
देशहित के हेतु, संग्राम भी लड़ी, जीजाबाई के सम किंगमेकर बनी।।
ऐनीबेसेंट तथा सरोजिनी नायडू, माता कस्तूरबा व माता स्वरूप रानी।
कमला मीरा बेन दुर्गा प्रेमवती, स्वतन्त्र संग्राम की बनी है महानेत्री।।
विजयलक्ष्मी तथा सुचेता कृपलानी, राजनीति क्षेत्र में महान् नेत्री बनी।
महान् वैज्ञानिक मॅडम क्यूरी बनी, कल्पना चावला देखो स्पेस यात्री बनी।।
श्रीमती अमृता व महाश्वेता देवी, अरून्धती राय व सुभद्रा भी कुमारी।
राण्डा बर्न शक्तिगवेन भक्ता मीराबाई, विदुषी लेखिकायें महिलायें भी हुई।।
नाइटिंगल नर्स मदर टेरेसा भी, सेवा के क्षेत्र में देखो महनीया बनी।
अतएव माता को गरिमामय माना, स्वर्ग से भी महान् माता को स्मृति माना।।
कुछ तो मातायें भी कलंकिनी हैं बनी, मर्यादा शालीनता ममता सर्व छोड़ी।
कामुक ईर्ष्यालु व मायाचारिणी बनी, बातूनी झगड़ालु श्रृंगारप्रिय बनी।।
जिससे बच्चों को संस्कार नहीं देती, नर्क समान देखो परिवार बना देती।
सास–ससुर बड़ों की सेवा नहीं करती, गर्भपात के लिये कारण भी बनती।।

बच्चों को दुग्धपान मातायें न कराती, जिससे बच्चों को निमोनिया होती।
लाखों बच्चों की मृत्यु प्रतिवर्ष होती, भारत की मातायें सबसे दोषी होती।।
ऐसी माताओं को स्तनकैंसर होता, दूध न पिलाने का कुफल भी मिलता।
शादी–शुदा की आत्महत्या तो बढ़ रही, परिवार समाज समस्या से घिरी।।
अतएव माताओं स्वयं आदर्श बनो, कनकनन्दी गुरु का आह्वान तुम सुनो।
शिक्षा के साथ तुम संस्कारवान् बनो, आधुनिकता के साथ आध्यात्मिक भी बनो।।

अच्छी माँ का यथार्थ मूल्यांकन

(अच्छी माँ का विश्वरूप)
(राग :– छोटु मेरा नाम है..., पूछ मेरा क्या नाम रे...)
अच्छी मेरी माँ है, सच्चा उसका काम/(नाम) है।
बिना रुपये रोज करती, अच्छे–अच्छे काम हैं।।ध्रु.।।
बिना बोले ही हमें पढ़ाती, अनुभव का ज्ञान है।
वात्सल्य सेवा परोपकार, ममता मृदुल ज्ञान है।।(1)
बिना डिग्री से उसे आते, धाय/(नर्स) डॉक्टर काम हैं।
तन–मन से रोग होने पर, करती चिकित्सा काम है।।(2)
मेरी माँ सम बावर्ची क्या होगा, फाइवस्टार होटल का?
मधुर ताजा भोजन खिलाये, वात्सल्य प्रेम कोमल का।।(3)
मेरी माँ है सफाईकर्मी, सफाई करती सभी की।
बर्तन वस्त्र घर–आंगन, भाई–बहन पशु की।।(4)
यशोदा माँ ग्वालिनी सम, दूध दोहती गायों का।
दही मट्ठा मक्खन घी, बनाती मिठाई मावा की।।(5)
मालिनी/(माल्यानी) सम मेरी माँ, शाक सब्जी उगाती।
खेत में जाकर कृषक सम, धान्य सस्य उगाती।।(6)
घर की सभी सार सम्भाल, व्यवस्था शोभा करती।
वेतन बिना मैनेजर का, हर काम करती।।(7)
नहाना धोना हमें सजाना, रोज–रोज करती।
ब्यूटिशियन से अधिक ध्यान, हमारा सदा करती।।(8)
धरती सम सहन करती, हमें क्षमा करती।
हितोपदेश हमें देकर, गुरु का काम करती।।(9)

भाई–बहनों में झगड़ा होने पर, उसे शान्त करती।
हमें प्यार से दण्ड देकर, न्यायाधीश भी बनती।।(10)
गर्भधारण व जन्म देकर, ब्रह्मा का काम करती।
हमारा पालन पोषण करके, विष्णु का काम करती।।(11)
हमारे दोष दूर करने में, रूद्र का काम करती।
कल्पवृक्ष कामधेनु व, चिन्तामणि सम बनती।।(12)
इसलिये तो मेरी माँ, स्वर्ग से भी महान् है।
मातृभाषा मातृभूमि, होती अन्य से महान् है।।(13)
माँ का दूध तो अमृत सम, शरीर मन की औषधि।
रोगहर बुद्धिकर, वात्सल्य सेवा की औषधि।।(14)
माँ का संस्कार जीवन आधार, वृक्ष हेतु यथा पानी है।
सदाबहार जीवन होता, आदर्श माँ की कहानी है।।(15)
मेरी माँ न डिग्रीधारी, नहीं कामकाजी है।
तो भी उससे अधिक श्रेष्ठ, नहीं वह नौकरानी है।।(16)
माँ से ही जन्म लेते, तीर्थेश गणेश चक्रेश हैं।
साधु सन्त महापुरुष, राम कृष्ण कवीश हैं।।(17)
माँ का न मूल्य करो, चमड़ी–दमड़ी पढ़ाई से।
अमूल्य है माँ का मूल्य, दाम न लगाओ नौकरानी से/(कामकाजी से)।।(18)
भौतिक युग में माँ का मूल्य, हो रहा है धन से।
इसलिये ही 'कनकनन्दी', रची है कविता मन से।।(19)

सुपुत्री के विभिन्न रूप

(राग :– नरेन्द्र छन्द, चौपाई)
मैं हूँ सुपुत्री सबसे न्यारी, सबसे न्यारी मेरी शान।
मानव जाति की मैं हूँ कन्या, परिवार का हूँ मैं मान।।
मेरा विविध रूप जग में, सुपुत्री दोहित्री सहोदरी सखी।
कन्या कुमारी बालिका लड़की, लाड़ली प्यारी बहिन लक्ष्मी।।(1)
मेरे से ही प्रारम्भ हुई, अंकाक्षरी शिक्षा महान्।
आदि ब्रह्मा ऋषभदेव की, सुपुत्री रूप में दोनों महान्।।
ब्राह्मी/(कन्या) ने जो लिपि सीखी, ब्राह्मी लिपि हुई महान्।
सुन्दरी ने जो अंक सीखी, गणित विद्या हुई महान्।।(2)

आगे हमने दीक्षा लेकर, प्रथम गणिनी हुई महान्।
साध्वी/(श्रमणी) गण की प्रमुखा, बनी ज्ञान–ध्यान में लवलीन।।
मुझे देवी समान मानकर, पूजा करता मानवगण।
मेरे कारण गृह–परिवार, बन जाता है स्वर्ग समान।।(3)
मेरी हँसी से मधु झरे, मेरी वाणी है वीणा स्वन।
पायल–घुंघरु ध्वनि मेरी, सर्व राग पंचम तान।।
दूध दोहन से दोहित्री प्यारी, बन जाती हूँ कन्या महान्।
ब्रह्मचारिणी कुमारी बाला, मेरा पावन रूप महान्।।(4)
मेरा दर्शन शुभ शकुन, जलकुम्भ सह अति पावन।
तीर्थंकर माता की सेवा, करती षट्कुमारी पावन।।
माता–पिता की सेविका मैं हूँ, भाई की भी सहयोगी।
दादा–दादी/(नाना–नानी) की प्यारी गुड़िया, समाज की सही लक्ष्मी।।(5)
ऐसी ही मेरी पावन छवि/(रूप), भेली–भाली प्यारी–सी।
गृह परिवार समाज की लक्ष्मी, लगती स्वर्ग की परी–सी।।
तथापि हाय! कलिकाल में, मेरी हत्या होती भारी।
गर्भ से लकर दहेज हेतु, बलि चढ़ती मेरी भारी।।(6)
माता बहिन पुत्री साध्वी/(सती, भार्या), गृहलक्ष्मी मेरा रूप।
तथापि मेरी बलि चढ़ती, यह मेरा दीन रूप।।
इसी से द्रवित 'कनकनन्दी', लिखा मेरा दोनों रूप।
स्व–जाति भक्षक मानव को, दिखाने को निज क्रूर स्वरूप।।(7)

सच्ची सास का स्वरूप

(राग :– पावन है इस देश..., भक्ति बेकरार है..., नगरी–नगरी द्वारे–द्वारे...)
सास हे सास! सबकी आस, घर गृहस्थी सम्भालने की।
बेटा–बहु बेटी व पति, एकता संस्कार सम्भालने की।।
तेरी भूमिका अनेक होती, सम्बन्ध से यह बनती।
माता सासू बहु भाभी, चाची मामी ननन्द पत्नी।।(1)
तू ही जड़ परिवार की, तेरे बिना न घर–गृहस्थी।
तेरा सम्बन्ध सबमें होता, तेरे नेह से बंधा गृहस्थी।।
तेरे नेह से सबको बांधो, एकता संस्कार सबको दो।
भेदभाव भी कभी न करो, बहु–बेटी को सम समझो।।(2)

तू भी कभी बहु थी तथाहि, कभी पुत्री व पत्नी।
तेरी पुत्री भी बनती बहु, उसके भी होते सास व पति।।
अपने समान पर को मानो, यह परिवार–धर्मनीति।
इससे सुख शान्ति मिलती, प्रेम एकता की सही नीति।।(3)
जैसा तेरा कर्म होगा, वैसा ही फल मिलेगा तुझे।
आम बोने से आम मिलेगा, बबूल से बबूल तुझे।।
कौशल्या व सुमित्रा सम, तुम बनो है सच्ची सास।
कैकेयी के समान तुम, कभी न बनो है ओछी सास।।(4)
सास ही नहीं माता भी तुम, मातृत्व भाव कभी न त्यागो।
सास के पहले माता ही रही, बहु के साथ मातृत्व धरो।।
माता के पहले बहु तू रही, उसके पहले रही तू बाला/(कन्या)।
उसी दृष्टि से बहु को देख, इससे होगा सबका भला।।(5)
वृक्ष के सम तू व्यवहार कर, जो आता है तेरे पास।
पक्षपात से रहित होकर, तू दे प्रेम बनकर सुसास।।
गृह–कलह व दहेज हत्या, न हो ऐसा करो उपाय।
गर्भपात व परिवार भंग, न हो पाये (तू) करो उपाय।।(6)
अपनी सन्तान प्रतिसन्तान को, दो संस्कार व सदाचार।
इससे तेरी महिमा बढ़ेगी, चारों ओर होगी जय–जयकार।।
इसी हेतु भी 'कनकनन्दी', ग्रन्थ रचा दोनों संस्कार।
शिक्षा–संस्कृति नारी–गरिमा, रचा सर्वोदय शिक्षा सार।।(7)

सबसे अधिक तनावयुक्त भारतीय नौकरपेशा महिला

(राग :– सुनो सुनो हे दुनियाँ वालो!.....)
सुनो भारतीय माता बहनो! तुम्हारे स्ट्रेस की सही कहानी।
सबसे अधिक झेलते स्ट्रेस, पृथ्वी भर में यह कहानी।।ध्रु.।।
नौकरीपेशा जो महिला होती, दुःख में बीतती भरी जवानी।
बीस से चालीस वर्ष आयु की, महिला की है यह दर्द कहानी।।
सत्तासी (87) प्रतिशत नारी होती, इस स्ट्रेस की पीड़ा कहानी।
बियासी (82) प्रतिशत नारी के पास, रिलेक्स की न समयावधि।।(1)
चार वर्षों में यह स्ट्रेस बढ़ा, सत्तावन (57) प्रतिशत भारतीयों में।

जो ऑफिस में करती काम, उनके जीवन की यह कहानी।।
प्रायः प्रतिशत पिचहत्तर (75) बच्चे, उनके कारण झेले बीमारी।
घर ऑफिस के तालमेल बिना, प्रतिशत इकतालीस (41) होती बीमारी।।(2)
अट्ठाईस (28) प्रतिशत सहते स्ट्रेस, राजनीति व बुरे साथी से।
सोलह (16) प्रतिशत होता है स्ट्रेस, ऑफिस की समस्याओं से।।
शेष प्रतिशत होता है स्ट्रेस, काम के ज्यादा दबाव से।
जिससे होते हैं अनेक रोग, इस मानसिक रोग से।।(3)
शिरदर्द व चक्कर आना, बेचैनी व चिढ़चिढ़ापन भी।
गुस्सा व दांत पीसना तथा, दिल की विभिन्न बीमारी भी।।
अस्थमा अल्सर कमजोरी व, हाइपरटेंशन मोटापा भी।
डायबिटीज व भूख न लगना, शरीर पेट में दर्द भारी।।(4)
स्मरणशक्ति भी कम होती, प्रतिरोधक शक्ति भी।
शान्ति व प्रोत्साहनकारक से, होती है यह समस्या दूर भी।।
इससे/(स्ट्रेस से) निवृत्त होने के उपाय, करो तुम हे माता बहिन!
साक्षर सदाचार सहित, प्राप्त करो हे आध्यात्म ज्ञान।।(5)
सहिष्णु बनो उदार बनो, धैर्यशाली व संयमी बनो।
बच्चों व परिवार को भी, आदर्श बनाओ तथाहि ज्ञानी।।
केवल धन कमाना मात्र, न हो तेरा परम लक्ष्य।
चार आश्रम पुरुषार्थ तेरा, होना चाहिये परम लक्ष्य।।(6)
आवश्यक यदि न हो तेरा, न करो नौकरी फैशन हेतु।
आधुनिकता का अन्धानुकरण, न करो जो होता स्ट्रेस हेतु।।
जिससे तुझे न मिले शान्ति, जिससे मिले तुझे दुर्गति।
ऐसा भी कोई काम न करो, करो वह काम मिले सुगति।।(7)
नारी ही कोई अबला न होती, न होती केवल भोग सामग्री।
धन कमाने की नहीं मशीन, नारी में भी होती आत्मिक शक्ति।।
ब्राह्मी सुन्दरी व चन्दनबाला, सीता गार्गी सम बनो महान्।
इसलिये ही 'कनकनन्दी', तुम्हें करता है सदा आह्वान।।(8)

पावन व पतिता नारी

(राग :– हे अम्बे जिनवाणी..., बंगला राग)
जननी! जननी! हे जननी! जय हो मानव की जननी। जय.....(टेक)

तीर्थेश गणेश की तुम जननी, ऋषि मुनि की श्रेष्ठ जननी।
सम्राट् चक्री की तुम जननी, मनु आर्य की महति जननी।।(1)
ब्राह्मी सुन्दरी सीता चन्दना, गार्गी लीलावती तुम प्रसिद्धा।
जीजाबाई व मदरटेरेसा, लक्ष्मीबाई व मीरा माता।।(2)
जग प्रसिद्धा अनेक माता, कला ममता वात्सल्य दाता।
कोमल करुणा सेवा शुचिता, तुम्हारे गुण अनेक माता।।(3)
गृहणी तुम हो गृहस्वामी की, माता तुम हो सब सन्तान की।
भगिनी तुम हो सब भाई की, पुत्री तुम हो माता–पिता की।।(4)
गृह प्रबन्धिनी पाक कलाज्ञी, संस्कारदात्री सेवा की धात्री।
पर्व उपवास वहनकर्त्री, त्रिवर्ग सहयोगिनी पात्री।।(5)
साधु सन्त की आहारदात्री, श्राविका ब्रह्मचारिणी पात्री।
क्षुल्लिका आर्यिका गणिनी पात्री, विदुषी लेखिका ज्ञानदात्री।।(6)
गर्भपात व फैशन व्यसन, अश्लीलता व कामुक भाव।
ईर्ष्या झगड़ालु निन्दक भाव, बातुनी स्पर्द्धा कुनारी भाव।।(7)
आधुनिकता का मद तुम त्यागो, शील सुगन्धता तुम फैलाओ।
संस्कार पाओ संस्कार दो, शरीर मोह तुम न पालो।।(8)
कुभाव त्यागो सुभाव धारो, सम्यक्त्व युक्त व्रत भी पालो।
परम्परा से मोक्ष भी वरो, अध्यात्म सुख तुम भी पा लो।।(9)

स्व माता–पिता से बच्चों की करुण प्रार्थना

(स्व माता–पिता के अत्याचार से स्वरक्षा के लिये बच्चों की उनसे ही प्रार्थना)
(राग :– बाबुल की दुआयें लेती जा....)
हे मेरे माता–पिता मुझे, सुख–शान्ति से जीन देना।
बनूँ या न बनूँ मैं धन्ना सेठ, मुझे अच्छा तो बनने देना।।ध्रु.।।
मेरे पूर्व के कर्मानुसार तुम्हारे घर में मैं आया।
संयोग बना आपका मुझसे अब सतत विकास करने देना।।
माता तो ममतामयी होती पिता जो करे पावन जीवन।
सुख–दुःख में जो साथ देते वे ही कहलाते कुटुम्बीजन।।
उभयकुल दीपिका सुपुत्री बनकर जब मैं गर्भ में आई।
गर्भ में ही मुझे तुम क्यों मारो ऐसी मेरी क्या गलती हुई।।
दैवात् यदि जन्म भी मेरा हुआ पुत्र या पुत्री के रूप में।

अबोध शिशुवय में ही क्यों दबाव डालते हो मुझमें।।
शिरीष कुसुम सम अति कोमल मेरा यह छोटा तन।
मक्खन से भी अति कोमल है मेरा यह नन्हा भोला मन।।
दो वर्ष की वय में ही मुझे क्यों भेजते हो पाठशाला।
तुम्हारे सान्निध्य बिना वह लगे है जैसे हो बन्दीशाला।।
पानी के बिना यथा मत्स्य तड़प–तड़प कर मरता है।
तुम्हारे बिना मैं भी स्कूल में जीते–जी ही मरता हूँ।।
मास्टर की है डाँट पड़ती रसविहीन भी पढ़ूँ है पाठ।
गृहकार्य की घानी में सदा पिसता रहूँ दिन व रात।।
आपकी स्वार्थाकांक्षा के बन्दीगृह में सदा मैं कैद हूँ।
पिंजराबद्ध पक्षी के सम मुक्तभाव से रहित हूँ।।
वह है बन्दीगृह आपका मैं बनूँ सबसे टॉपर।
परीक्षा में भी अव्वल रहूँ प्रतियोगिता में रहूँ सुपर।।
नाच व गाना में रहूँ टॉपर वादविवाद व मॉडल में।
हीरो–हीरोईन सम बनूँ मैं सदा आगे ही रहूँ सब में।।
इसी बन्दीशाला के अतियोग्य जब मैं न बन पाता हूँ।
प्रताड़ना निन्दा उपेक्षा द्वारा विभिन्न दण्ड सहता हूँ।।
जिससे मैं भारी डिप्रेशन व टेंशन सदा भोगता हूँ।
असहनीय होने पर मैं आत्महत्या कर छूटता हूँ।।
गत दशक में बारह 12 प्रतिशत तक मेरी आत्महत्या बढ़ी।
विकसित पूर्व किशोर कली की आत्महत्या है बढ़ी।।
दशलाख किशोरों में हाय! नौ आत्महत्या करते हैं।
तीन वर्ष में सोलह हजार छात्र आत्महत्या करते हैं।।
अहिंसक देश भारत के आज विद्यार्थी ये कृत्य करते हैं।
जिस देश के बच्चे भी देखो आध्यात्मिक ऊँचाई पाते थे।।
मैं हूँ विशाल वृक्ष के अंकुर स्वेच्छा से विकसित होने दो।
स्वार्थ के संकीर्ण गमला के मध्ये मुझे नहीं रोपने दो।।
मैं हूँ कोमल सुवास कली मुझे ही स्वयं खिलने दो।
खिलने के पहले मसलकर निर्दयता से मरने दो।।
'कनकनन्दी' के लेखन द्वारा प्रकटा यह मेरा निवेदन।
मेरे माता–पिता कृपा करके स्वीकार करो मेरा आवेदन।।

जैनधर्म एवं नारी

¼ukjh dh xfjekoLFkk ,oa ifrrkoLFkk½

आचार्य श्री कनकनन्दी जी की क्षुल्लक अवस्था (1979) का लेख

exyLej.k

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका सम्पुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्म प्रेक्षिणी दृष्टि लक्ष्मीः।।

जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाले सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी सुख की भूमि होती हुई मुझे उस तरह सुखी करें जिस तरह कि सुख की भूमि कामिनी कामी पुरुषों को सुखी करती है। शुद्ध शीलवाली मुझे रक्षित करें जिस तरह कि शुद्ध शीलवाली जननी पुत्र को रक्षित करती है और मूलगुण से भूषित मुझे उस तरह पवित्र करें जिस प्रकार कि गुणों से युक्त कन्या कुल को पवित्र करती है।

सत्यार्थ निरूपक वीतरागी भगवान् के धर्म ने अशेष पदार्थों पर प्रकाश डाला है। जैसे कि सूर्य निःस्वार्थ होकर श्रेष्ठ से श्रेष्ठ निकृष्ट से निकृष्ट पदार्थों को प्रकाशित करता है। अर्थात् जो पदार्थ जैसे हैं, उन्हें उसी प्रकार प्रकाशित करके अन्धकारजन्य उन पदार्थों के बारे में जो अज्ञता थी उसे दूर करने में निमित्त होता है। किन्तु सूर्य का यह स्वभाव यह नहीं है कि श्रेष्ठ वस्तुओं को ही प्रकाशित करे, निकृष्ट वस्तुओं को प्रकाशित नहीं करे। यदि सूर्य सुवर्ण, रत्न, धन, दौलत को ही प्रकाशित करता किन्तु कण्टक, कर्दम, हिंस्र जन्तु, मलादि निकृष्ट वस्तुओं को प्रकाशित नहीं करता तो प्राणियों को किस प्रकार विपत्तियों के सन्मुख होना पड़ता – यह सर्वसाधारणों के अनुभवगम्य विषय है। यदि एकान्ततः सर्वदा घृत को पौष्टिक खाद्य ही मान लेंगे तो रोगियों को भी पौष्टिक होना चाहिये था। अर्थात् उन्हीं के लिये घृत अपच्य होने से वैद्यराज रोगी का मन घृत से निवृत्त हो इस दृष्टिकोण से घृत की अहितकारिता वर्णन करते हैं; परन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं है कि घृत एकान्ततः घृणित निन्दित वस्तु है। वस्तु एक दृष्टि से कतिपय अंश में उपादेय है। अन्य दृष्टि से उपरोक्त कथन विपरीत हो सकता है। इस कारण जैनधर्म का सर्वप्रथम एवं सर्व प्रधान उपदेश **सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।** अर्थात् जो वस्तु जैसी है उसे उसी

प्रकार देखना, श्रद्धा करना, जानना एवं सेवन (चारित्र) करना मोक्षमार्ग है। वस्तु के यथार्थ परिज्ञान करने की प्रणाली प्रतिपादन करते हुए आचार्य कहते हैं –

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।।

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

जो पदार्थ को न्यूनता अधिकता रहित, यथार्थता सहित, विपरीतता रहित एवं सन्देह रहित परिज्ञान करता है उसे आगमज्ञ पुरुष यथार्थ ज्ञान कहते हैं। जैन धर्म के प्रतिपादन करने की प्रणाली भी अत्यन्त वैज्ञानिक, समयोपयोगी, स्व–पर हितकारक सापेक्षादि सहित है। जैनधर्म को प्रतिपादन करने वाली वचनशैलीरूपी अमोघ अस्त्र **अर्पितानर्पित सिद्धेः**। अर्थात् विवक्षित और अविवक्षित रूप से एक द्रव्य में रहने वाले अनन्त धर्मों की सिद्धि सर्वत्र, सर्वदा अजितशत्रु रही है।

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशात् यस्य कस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्य -मर्पितमुपनीतमिति यावत्। तद्धि परितमनर्पितम्। प्रयोजनाभावात्।

Substances are endowed with an infinite number of attributes. When we describe a substance we can do so by adopting one point of view at a time so giving prominence to a few attributes. However, it does not mean that other attributes are absent. What it means is that the missiang attributes are of no purpose to us at that time.

अनेकान्तात्मक वस्तु को प्रयोजनवशतः जो धर्म का कथन करते हैं, उस समय वह धर्म प्राधान्यता को प्राप्त होता है। अप्रयोजन धर्म गौण हो जाता है, परन्तु उस समय अन्य धर्म लोप नहीं हो जाते हैं।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। अर्थात् माता एवं मातृभूमि स्वर्ग से भी महान् है। क्योंकि –

यन्मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणां।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।

(सागारधर्मामृत)

मनुष्यों की उत्पत्ति के अवसर पर जो उनके माता–पिता दुःख को सहन करके उनका उपकार करते हैं, उसका प्रत्युपकार सौ वर्ष में भी नहीं हो सकता है, इसीलिये गृहस्थ के लिये व्यवहार से कहा गया **यजन् गुणगुरून्** अर्थात् वीतरागी गुरु, माता, पिता आदि गुरुओं की सेवा करें।

माता के वात्सल्य, प्रेम, उदारता, दयार्द्रता, सेवापरायणता आदि गुण अन्योऽन्यासाधारण हैं। यह सब गुण अपनी सन्तान को माध्यम करके उत्पन्न होता है एवं क्रम से वृद्धि होकर विश्वप्रेम, निःस्वार्थपरता, महानता में परिणमन हो जाता है। माता के हृदय में एक महान् भावना संचरित होती है कि 'मेरी सन्तान मेरे लिये जिस प्रकार है, विश्व की समस्त सन्तानें अपनी–अपनी माता के प्रति उससे कुछ कम नहीं हैं, मातृजाति की दृष्टि से समस्त मातायें समान हैं। अतः विश्व की समस्त सन्तान मेरी ही सन्तान हैं।' यह बात अनुभव एवं प्रत्यक्षसिद्ध है। इतिहास के स्वर्णाक्षरों में भी मातृहृदयता की महानता प्राप्त होती है। जिस समय महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने जा रहा था, उस समय शतपुत्रजननी गान्धारी ने अपने पुत्रों को, धृतराष्ट्र को युद्ध से निवृत्ति के लिये कहा, परन्तु **मरणकाले विपरीतबुद्धिः** न्याय के अनुसार दुर्योधन ने युद्ध करना ही निश्चित किया। युद्ध प्रारम्भ करने के लिये एवं युद्ध में जययुक्त होने के लिये माता गान्धारी से आशीर्वाद ग्रहण करने के लिये आशाभरे हृदय से माता के पास आया।

उसके हृदय में विश्वास था कि यदि सती शिरोमणि, न्यायपरायणी माता का आशीर्वाद प्राप्त हो जायेगा तो मैं युद्ध में जययुक्त हो जाऊँगा। दुर्योधन माता के चरणों में नतमस्तक होकर आशीर्वाद प्राप्ति के लिये प्रार्थना कर रहा है –

शतेक पुत्र जननी तुहि मा, श्रेष्ठ ए धरातळे।
तो आशीषे मात ए तिनि भुवन, बान्धि पारिवुं वळे।।

हे शतपुत्रों की जननी! तुम इस धरातल में श्रेष्ठ हो। यदि तुम्हारा आशीर्वाद प्राप्त हो जायेगा तो मैं इस तीन भुवन को बन्धन में डाल सकता हूँ।

पुत्र के मुख से उपरोक्त वचन सुनने के बाद माता अत्यन्त शान्त, गम्भीर, विमल हाससहित, कोमल मधुर गिरा से अपने अन्तःकरण का आशीर्वाद प्रकट करती हुई कहती है –

कुरुमणि! घेन आशीष तोहर जन नीर वराभय।
अक्षय हेउ पुण्य जगते धर्मर हेउ जय।।

हे कुरुमणि दुर्योधन! मेरा मंगलमय आशीष ग्रहण कर। पुण्य का जगत् में अक्षय हो एवं धर्म की जय हो यह मेरा आशीर्वाद है।

जो पापी है वह अपना पाप स्वयं जानता है। दुर्योधन जानता था पाँचों पाण्डव धर्मात्मा हैं, मैं अधर्मी हूँ। अतः माता का पुनीत आशीर्वाद भी उसके लिये अभिशाप मालूम पड़ा। जिस प्रकार अमृततुल्य अनेकान्तमयी जिनवाणी भी

एकान्त मिथ्यादृष्टि को विषतुल्य अनुभव होती है। जब दुर्योधन ने सन्दिग्ध एवं कातर मति से माता के प्रति दृष्टिपात किया, तब माता उत्तर देती है –

शतेक पुत्र नुहे खाली मोर वुह्इ वत्स जणे।
सर्वे मोहर प्रिय सन्तान आजि ए धरम रणे।।
वसु निगडि रुधिर देलाजे शत पुत्ररे ढाळ।
सवु जननीर अन्तर से कि न पारे हृदय भाळी।।

मेरे केवल शत पुत्र नहीं है, आज इस धर्मयुद्ध में स्थित समस्त सेना मेरी प्रिय सन्तान है। जिस माता ने शतपुत्रों के लिये अपने वक्ष से रक्त प्रसवण कर दिया, वह क्या समस्त माताओं के हृदयस्थल को जान नहीं सकेगी? जिस माता के हृदय में विश्व के समस्त सन्तानों के लिये वेदना है, वह विश्व की माता है। इस सदृश माता मातृहृदय का सुमहत् परिचय देती है। गान्धारी ने दुर्योधन की जय होने के आशीर्वाद नहीं दिये, क्योंकि दुर्योधन के लिये जो आशीर्वाद होता, वही आशीर्वाद समस्त विश्व सन्तान के लिये अभिशाप होता। इससे मातृहृदय की महानता चूर्ण–चूर्ण होकर धूलि में परिणत हो जाती।

धन्य जननी धन्य से हिआ गठित कि उपादाने।
विश्व सहस्र सन्तान लागि वेदना गलइ प्राणे।।

(गान्धारीर आशीर्वाद आरिया वाङ्मय)

जिस माता के हृदय से विश्व के सहस्रों सन्तानों के लिये वेदना, वात्सल्य निःस्रवण होता है उस माता को अशेष धन्यवाद। उन्हीं का हृदय स्वर्गीय उपादान से गठित है। इसीलिये तो विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने माता का जयगान अत्यन्त मधुर स्वर से गुंजित किया एवं माता के आशीर्वाद की कामना की –

जननी तोमार करुण चरणरणानि,
हेरिनू आजि ए अरुण किरण रूपे।
जननी तोमार मरण हरण वाणी,
नीरव गगने भरि उठे चुपे चुपे।।

(गीतांजली)

हे जननी! आपके करुणारूपी चरणयुगल को आज हम सूर्य के प्रभातकालीन अरुण किरणरूप से प्राप्त किये हैं। हे जननी! आपकी अमृतमयी मृत्यु हरण करने वाली वाणी नीरव गगन में चुपचुप से भर गई है। यह मातृहृदय का परिचय केवल प्राचीन युग में ही प्राप्त होता था यह बात नहीं है, किन्तु वर्तमान

भारत में एवं विदेश में भी प्राप्त होता है Lady with the lamp अर्थात् 'दीपांगना' नाम से अभिहित शान्तिदायिनी कुमारी नाइटिंगेल को शान्ति प्रदायिनी माता के रूप में कौन नहीं जानता है? जिनके हस्तस्थित दीपक की क्षीण रश्मि अथवा उनकी अस्पष्ट छाया का दर्शन करके महान् पीड़ा से शापित रोगी अत्यन्त आनन्द से उत्फुल्ल हो उठते थे। जिनके वचन ही रामबाण समान महामृत्युंजयी औषधि का काम करते थे।

गुणग्राही अंग्रेज जाति एवं सरकार ने उन्हें उनके कार्य से अत्यन्त प्रभावित होकर Order of Merit की उपाधि से सम्मानित किया। उनकी प्रेरणा से Red Cross Society एवं St. John Ambulance's आदि सेवायें प्रतिष्ठित हुई जो कि विश्वमाता नाइटिंगेल की विश्वसन्तान सेवा का महान् जाज्वल्यमान उदाहरण है। महारानी चेलना की प्रेरणा से राजा अशोक (श्रेणिक) ने भी विहार, सड़क, कूआँ पुष्करिणी, चिकित्सालय, पशुचिकित्सालय आदि स्थापित किये थे।

मातृहृदय की परिसीमा में ही माँ की महत्ता सीमित नहीं है। माता का हृदय सन्तान के पालन के लिये जितना कोमल है, वही शत्रु से रक्षा करने के लिये शत्रु के प्रति उतना कठोर भी है। नारी अबला नहीं है, सबला है इसका परिचय दिया है। **सबला अपि नरा यथा निर्बलाः क्रियन्ते असौ सबला।** सबल मानव भी जिसके द्वारा निर्बल किये जाते हैं, उसे अबला कहते हैं। नारी केवल वीरप्रसभु नहीं है, वीरांगना भी है। रानी जीजाबाई, महापराक्रमशालिनी दुर्गाबाई, लक्ष्मीबाई, कस्तुरीबाई आदि की राजनीतिज्ञता एवं पराक्रम असाधारण है। रानी एलिजाबेथ, सरोजिनी नायडू, कृष्णा हातिसिंग, इन्दिरा गांधी आदि नारियों की राजनीतिज्ञता सर्वसाधारण को विदित है। शिवाजी को छत्रपति शिवाजी बनाने का श्रेय उनकी माता पंडिता वीरांगना जीजाबाई को है।

वीरांगनाओं का परिचय प्राचीन इतिहास में भी कम नहीं है। कैकेयी ने दशरथ की सारथी बन कर युद्ध में जययुक्त होने का श्रेय भी प्राप्त किया था। महाभारत से विदित होता है कि जिस समय अर्जुन दिग्विजय के लिये निकले उस समय रानी जना के पुत्र प्रवीर ने अर्जुन के विरुद्ध में युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुए। उस समय प्रवीर के पिता नीलध्वज ने अर्जुन के पराक्रम को जान कर प्रवीर को युद्ध करने के लिये मना किया। जना ने प्रवीर को युद्ध करने के लिये उद्‌बोधित किया। राजा ने जना को अर्जुन के पराक्रम का वर्णन करते हुए युद्ध से निवृत्त होने के लिये जब कहा तब जना कहती है –

ए हीन मन्त्रणा, भीरु-कापुरुषोचित,
शोभे कि नरेन्द्र तव मुखे-उन्मादिनी।
नुहे जना वीरांगना, वीर प्रसविनी,
नुहई राजन्! मुहिं तिले ताल भ्रान्ति-
विलासिनी! नुहे मुहि तुम्भ सम प्रभो,
गड्डलिका स्रोत-न्याय पक्षपाती सदा।।

हे नरेन्द्र! यह हीन कापुरुषोचित मन्त्रणा आपके मुख से शोभा को प्राप्त नहीं होती। मैं उन्मादिनी नहीं हूँ। मैं वीरांगना एवं वीर प्रसविनी हूँ। मैं तिल में ताल की कल्पना करने वाली एवं विलासिनी भी नहीं हूँ। मैं आपके समान मेष भेड़िया की चाल का अनुकरण करने वाली नहीं हूँ। धन्य वीरांगना! धन्य वीर प्रसविनी! इसीलिये महान् स्वाधीनता संग्रामी वीर सुभाषचन्द्र कहते थे – If you give me sixty good mothers and I can give you a good nation. यदि तुम मुझको साठ अच्छी मातायें प्रदान करोगे तो मैं तुम्हें एक आदर्श राष्ट्र प्रदान कर सकता हूँ। योग्य माता की योग्य सन्तान होती है। कुर्मोन्नत योनि के बिना महापुरुषों का जन्म नहीं हो सकता है। ठीक ही है – रत्नों का जन्म रत्नाकर को छोड़ कर अन्य पुष्करिणी आदि में नहीं हो सकता है। कीट दंश निःसार बीज से कभी भी उत्कृष्ट अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है। महान् धर्म प्रवर्तक तीर्थंकर आदि महान् पुरुषों को गर्भ में नौ माह धारण करने वाली एवं गर्भस्थ सन्तान को स्वयं भुक्षित खाद्य का सार अंश प्रदान करके सन्तान की वृद्धि करने वाली माता ही है। महान् पुरुषों को उत्पन्न करने वाली माँ क्या महान् नहीं है?

महान् होने के लिये महान् शिक्षा भी आवश्यक है। प्रारम्भिक युग से ही स्त्री शिक्षा की दिशा में अग्रगण्य रही है। युग एवं धर्मप्रवर्तक आदिनाथ तीर्थंकर भगवान् ने शिक्षा का प्रारम्भ किया था। जबकि उन्होंने भरत एवं बाहुबली को राजनीति एवं अर्थशास्त्र की शिक्षा दी तब उन्होंने ब्राह्मी एवं सुन्दरी को अक्षर एवं अंक शिक्षा प्रदान की। अनेक आर्यिका, नारीरत्न, सती हो गई हैं जिन्हें शिक्षा अत्यन्त पराकाष्ठा से प्राप्त हुई थी। वर्तमान में भी इस संस्कृति को जीवित रखने वाली अनेक आर्यिकायें एवं श्राविकायें विद्यमान हैं। चरणानुयोग के महान् शास्त्र भगवती आराधना की हिन्दी टीकाकर्त्री सम्यग्ज्ञानशिरोमणि, गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी, त्रिलोकसार की टीकाकर्त्री श्री विदुषी

आर्यिका विशुद्धमती माताजी, प्रचण्ड अष्टसहस्री की अनुवादिका श्री न्यायदिवाकर ज्ञानमती माताजी, सागारधर्मामृत की अनुवादिका श्री व्याख्यान वाचस्पति सुपार्श्वमती माताजी, जिनमती माताजी आदि ज्ञानरूपी सागर में कितनी मग्न हुई हैं, उन्हीं के प्रवचन व शास्त्र प्रत्यक्ष अवगत हो जाता है। श्राविकाओं के मध्य में भी पं. चन्दाबाई, कृष्णाबाई, सुमतीबाई आदि अग्रगण्य हैं। लीलावती, विद्यावती आदि मध्यमकालीन विदुषियाँ हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग की सबसे मूल्यवान् एवं कैंसर के एकमात्र प्रतिनिरोधक औषधि रेडियम की आविष्कारक मॅडम क्युरी की ज्ञान गरिमा की कौन प्रशंसा नहीं करेगा? कर्नाटक प्रान्त की अनेक महिलायें हो गई हैं जिन्होंने स्वतन्त्र शास्त्र रचना की हैं। पम्पादेवी ने जिनपूज अर्चन, पंचामृत अभिषेक पाठ आदि रचनायें की हैं। इस प्रकार नारियाँ सम्मान की पात्र हैं।

विद्यावान् पुरुषो लोके सन्मति याति कोविदैः।
नारी च तद्वति धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमे पदे।।

जिस प्रकार लोक में विद्वान् पुरुष आदर सत्कार के पात्र होते हैं, उसी प्रकार विदुषी नारी।

धर्म–अर्थ–कामरूपी त्रिवर्ग के साधनभूत गृहस्थाश्रम का मूल स्त्री है। स्त्री बिना गृहरूपी तपस्थान नहीं हो सकता।

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्त्रिवर्गो गृहाश्रमः।
गृहं हि गृहिणीमाहुर्न कुचकटसंहतिम्।।

(सागार धर्मामृत – 2/51)

उत्तम कन्या को देने वाले साधर्मी गृहस्थ ने साधर्मी गृहस्थ के लिये त्रिवर्ग सहित गृहरूपी तपाश्रम दिया है, क्योंकि विद्वान् लोग स्त्री को ही गृहाश्रम कहते हैं। न कि दीवाल, बांस, लकड़ी के समूह को गृह कहते हैं। योग्य स्त्री के कारण स्वदारसन्तोषव्रत पालन होता है। देवपूजा, सत्पात्रदान आदि अनुष्ठान होने से धर्मपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। योग्य स्त्री के कारण वेश्यादि व्यसन से व्यावृत्ति होती है, आकुलता से रहित होकर पुरुष अर्थोपार्जन कर सकता है। गृह का सुचारु रूप से पालन करना स्त्री के ऊपर निर्भर करता है। इससे अर्थपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। अनादि से संचित चारित्रमोह सम्बन्धी वेद की वेदना को निवारण करने के लिये रमणीय प्रीति–सम्भोगरूप कामपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। उन तीनों सहित कन्या को देने वालों ने गृहस्थाश्रम दिया यह सिद्ध हो जाता है।

धर्मसन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्तकुलोन्नतिम्।
देवादि सत्कृतिं चेच्छन्सत्कन्यां यत्नतो वहेत्।।

(सागार धर्मामृत – 2/6)

धर्म की परम्परा चलाने के लिये सन्तति की, संक्लेशरहित रति की, व्रत कुल आदि की उन्नति तथा देवपूजा दान आदि धार्मिक अनुष्ठान की इच्छा से स्वयं योग्य प्रशंसनीय उत्तम कुल की कन्या के साथ विवाह से अर्थात् धर्मपत्नी बिना उपरोक्त कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। यदि सुयोग्य पुत्र नहीं है तो धर्मसाधन में भी व्याघात होता है।

विना सुपुत्रं कुत्र एव न्यस्य भारं निराकुलाः।
गृही सुशिष्या गणिवत् प्रोत्सहेत परे पदे।।

(सागार धर्मामृत – 30/38)

जिस प्रकार धर्माचार्य सुयोग्य शिष्य के अभाव में अपना भार अन्य को समर्पित करके निराकुल हो समाधिसाधन में प्रवृत्त नहीं हो सकते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ भी सुयोग्यपुत्र के अभाव में धार्मिक उच्चपद प्राप्त करने के लिये गृहस्थ भार अन्य के ऊपर न्यस्त करके निराकुल नहीं हो सकता है। इस प्रकार त्रिवर्ग के लिये एवं परम्परा से मोक्ष पुरुषार्थ के लिये सुयोग्य स्त्री आवश्यक होती है।

स्त्री केवल पाशविक भोग की सामग्री नहीं है। अनेक धर्मप्राण नारियों ने अपने कुमार्गगामी स्वामियों को सुमार्ग में प्रवाहित किया है। अमूढ़दृष्टा रानी चेलना अपने तैंतीस सागर नरक की आयु बांधने वाले स्वामी के लिये आगामी तीर्थनायक बनने में निमित्त हुई। मैना सुन्दरी ने अपने स्वामी श्रीपाल एवं सात सौ कुष्ठरोगियों का कुष्ठ धर्म की श्रद्धा के बल से निवारण किया एवं उनको धर्ममार्ग में दृढ़ किया। भीलनी पर्यायस्थ राजुलमती ने भील पर्यायस्थ नेमिनाथ को हिंसा से छुड़ा कर धर्ममार्ग में लगाया था। जिनमती, नीली ने अपने कुटुम्ब को जिनधर्म में दृढ़ कराया था। इसीलिये कहते हैं **सत्कन्या उभयकुलवर्द्धिनी** सत्कन्या उभय कुल की वृद्धि करने वाली होती है।

रूपवती लज्जावती शीलवती मृदु वैन।
तियकुलीन उत्तम सो ही गरिमा धर गुण ऐन।।

कुलीन स्त्री अपने पति के दुःख सुख में समरूप से दुःखी सुखी होती है। धार्मिक कार्य में पति को पूर्णरूप से सहायता करती है। इसीलिये सहधर्मिणी कहलाती है। आगमानुसार पाणिग्रहण के बाद वर पुरुष नहीं रहता। उसकी

दृष्टि में पतिदेव बना जाता है। भक्त के लिये भगवान् के समान स्त्री का स्वामी हो जाता है। पति की कुरूपता, निर्धनता आदि उसकी दृष्टि में नहीं आती है।

सुखी दुखी कुरूपी च निर्धनी धनवानपि।
पिता दत्तो वरो योऽसौ स सेव्यः कुलयोषिता।।

सुखी, दुःखी, कुरूपी, निर्धन, धनवान् आदि भी वरों को पिता ने कन्यादान दे दिया। कन्या उस वर को अपना स्वामी, देव समझ कर सेवन करें। रामचन्द्र जी का जब वनवास हुआ तब महान् सुकुमारी, पतिप्राणा, सती सीता ने भी पति के साथ वनवास स्वीकार किया। कामासक्त रावण के द्वारा वन से अपहृत हुई अशोक वन में भूख, प्यास से पीड़ित, रावण के द्वारा ताड़ित कामाराधी बनने से सम्बोधित, राक्षसों के द्वारा रक्षित, शोक से विह्वल, विद्या से ग्रसित होने पर भी शील से भूषित रही। निष्कलंक रामचन्द्र ने मातृजाति के कलंक को निष्कलंक करने के लिये एवं मातृत्व को नष्ट करने वाले का क्या परिणाम होता है? यह विश्व के समक्ष प्रकट करने के लिये दशानन को शून्यानन तथा सीता सती का उद्धार करके स्वदेश में पुनरागमन किया। नयनाभिराम रामचन्द्र सीता के स्वदेश में उदय से सुजन सुमन विकसित हो उठे, किन्तु दुर्जन पुरुष महान् पुरुषों को विपद् में ग्रसित करने की अभिलाषा करता है। कारण सत्य पुरुषों को सच्चारित्ररूपी किरणों से स्वयं का दुश्चारित्र प्रकाशित हो जाता है।

क्षुद्रो न स्वात्मलाभाय महतां विपदोक्षणः।
मक्षिकाणामभवाय कुष्ठो सूर्यास्त मीहते।।

क्षुद्र मनुष्य अपने लाभ के लिये महापुरुषों को विपत्तिग्रस्त देखना चाहते हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि कुष्ठी मनुष्य मक्षिका हटाने के लिये सूर्यास्त की प्रतीक्षा करता है। **दुर्जनता न केन निवार्यते** अर्थात् अर्थात् दुर्जनता किसी से भी निवारण नहीं की जा सकती है। इस नियम के अनुरूप कतिपय दुर्जनों ने निष्कलंक सीता के प्रति कलंक आरोपित किया। लोकापवाद के भय से युक्त, प्रजावत्सल रामचन्द्र ने शीलेशा जानकी को मुनिदर्शन के बहाने एकान्त अरण्य के मध्य निर्वासित कर दिया। यह कार्य न्यायपरायण राजा राम के प्रति न्यायोचित नहीं था, किन्तु **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयम्** के अनुसार बाध्य होना पड़ा। अरण्य के मध्य में प्रजावत्सल वैदेही मातृत्व स्नेह की निर्मल धारा प्रवाहित करते हुए अपनी विवेक बुद्धि और धर्मनिष्ठा का दिग्दर्शन कराते हुए सेनापति के प्रति कहती है –

अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा।
सदा रक्ष प्रजा सम्यक् पितेव न्यायवत्सलः।।

हे पुरुषोत्तम पद्म! मेरे वियोगजन्य दुःख का परित्याग कर धैर्य के साथ प्रजा का सम्यक् प्रकार से पालन करना। धन्य है कोमलहृदया मातृ ममता भरा सबल नारी का धैर्य। साधारण प्राणियों की विपत्ति के समय में धर्मज्ञता, धर्मावलम्बता छूट जाती है, किन्तु असाधारण नारी रामप्रिया का इससे विलक्षण स्वभाव था। वह पुनः रामचन्द्र को सन्देश भेजती हुई कहती है –

संसारात् दुःख निरोधान्युच्यते येन देहिनः,
भव्यास्तद्दर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि।
साम्राज्यादपि पद्माभः तदेव बहुमन्यते,
नश्यत्येव पुनाराज्यं दर्शनं स्थिरसौखदम्।।

हे न्याय वत्सल पद्मनाभ पद्म! जिस प्रकार लोकनिन्दा के भय से विवेचन किये बिना आपने मेरा परित्याग किया है, उस प्रकार सांसारिक राज्य से उत्तम सम्यक्त्व रूपी रत्न को लोकभय से नहीं त्याग करना, क्योंकि इहलौकिक सुख की प्राप्ति होना तो सुलभ है, परन्तु एक बार हाथ से निकल जाने के बाद सम्यग्दर्शन रूपी महान् राज्य प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। पुनः पुनः रामचन्द्र को सन्देश देती हुई धैर्यशालिनी सीता कहती है –

सेनापते त्वया वाच्यो रामो सद्वचनादिदम्।
यथा सत्या गजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो।।

हे सेनापते! राम से कहना कि मेरे त्याग का विषाद नहीं करना, क्योंकि विषाद में मानव अपने कर्त्तव्यों को विस्मृत कर देता है। सीता सती ने राम के प्रति तिल मात्र वितृष्णा भाव पोषण नहीं किया था। राम के पास अपनी शेष अभिलाषा भेजी थी।

आउ कि प्रभु! एहि दग्धनयन देखिव नाहिं सेहि सौम्य वदन?
आउ कि ए जनमे ए अभागिनी ए दग्ध वक्षे रखि से पाद वेनि।
शमिव नाहिं कह हे रघुपति! हृदयज्वाला तार दारुण अति।।

हे प्रभु! क्या पुनः आपके सौम्य वदन को देखने का सौभाग्य इस दग्धनयना को प्राप्त होगा? हे रघुपति! क्या पुनः इस जन्म में यह अभागिनी अपने दग्ध हृदय में आपके शीतलता प्रदान करने वाले चरणद्वय धारण करके अपनी हृदय ज्वाला को प्रशमन नहीं करेगी?

धन्य है सती नारी! पति द्वारा निर्वासित होने पर भी उसने अपने हृदय मन्दिर से पतिदेव को निर्वासित नहीं किया।

नारी केवल पुरुष के त्रिवर्ग साधने रूप पुरुष द्वारा चालित निर्जीव यन्त्र नहीं है। सती नारी स्वच्छन्दी नहीं होती, किन्तु चतुर्थ वर्ग (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये स्वतन्त्रता रखती है। जब उसकी दृष्टि में संसार की क्षणभंगुरता, स्त्री पर्याय की असारता, योग की आकुलता, बन्धन की पराधीनता, आत्मा की शाश्वतिकता, त्याग की महानता, स्वाधीन की अनाकुलता प्रकट होने लगती है, तब वह समस्त सांसारिक बन्धन को क्षणमात्र में छिन्न करके आत्मसाधना में अग्रसर हो जाती है। उस अवसर पर उसे स्वामी अधीनता, सामाजिक बन्धन, कुलाचार की लज्जा आदि प्रतिबन्ध नहीं डाल सकते हैं। उसकी दृष्टि में उस अवसर पर सांसारिक समस्त संयोग से रहित एकत्व विभक्त शाश्वतिक आत्मा का प्रतिभास होने लगता है।

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ताः, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः।।

Myself is ever one, Eternal, Pure and Allknowing in its essence. The rest are all outside me, non-eternal and the result of my actions (Karmas).

मेरा आत्मा शाश्वतिक है, अत्यन्त शुद्ध है, ज्ञानगम्य है। मेरे से पृथक् बाह्य समस्त पदार्थ क्षणभंगुर हैं एवं कर्मजन्य हैं।

अनेक नारीरत्न नारी पर्याय की सार्थकता स्त्रीलिंग छेद करने में है – ऐसा विचार करके आर्यिका दीक्षा धारण करती हैं, क्योंकि बिना आर्यिकापद धारण किये स्त्रीलिंग का छेदन नहीं होता है। स्त्रीलिंग छेद किये बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। इस प्रकार स्त्रीपर्याय की निकृष्टता का विचार करके अनेक उत्कृष्ट स्त्रियाँ आर्यिकाव्रत को (महाव्रत को) धारण करके सुवर्ण में सुगन्धी का संचार करती हैं।

जिससमय राघव ने महासती सीता को सतीत्व की परीक्षा देने के लिये कहा उस समय महासती सीता ने स्वसतीत्व की निष्कलंकता की महानता पर अटूट विश्वास रखते हुए उस प्रलयकालीन अग्नि के समान अग्नि वापिका के पास अत्यन्त दृढ़ता के साथ पहुँची। वहाँ पर कुछ क्षण के लिये कायोत्सर्ग करके भावसहित भगवान् की स्तुति की एवं मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र एवं पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर उदात्त गाम्भीर्य और अत्यधिक विनय से सीता ने कहा –

कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम्।
समुद्ध हामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम।।

(पद्मपुराण – 26)

मिथ्या दर्शनिनीं पापां क्षुद्रिकां व्यभिचारिणीम्।
ज्वलनो मां दहत्येष सतीं व्रतस्थितां तु मा।।

(पद्मपुराण – 28)

मैंने राम व्यतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को स्वप्न में भी मन, वचन और काय से धारण नहीं किया है यह मेरा सत्य है। यदि मैं मिथ्यादृष्टि क्षुद्रा और व्यभिचारिणी होऊँगी तो यह अग्नि मुझे जला देगी और यदि सदाचार में स्थित सती होऊँगी तो कदाचित् नहीं जला सकेगी।

इतना कह कर उस देवी ने भयंकर अग्नि में प्रवेश किया, परन्तु सतीत्व के महान् तेज से वह अग्नि पिघल कर स्फटिक के समान स्वच्छ, सुखदायी तथा शीतल जल में परिणत हो गया। सो ठीक ही है – कभी भी उत्तप्त अंगारा जल को गला सकता है क्या? अथवा क्रोधित श्रृगाल अष्टापद को कभी भी वध कर सकता है क्या? क्षुद्र पर्वतों को हेला में नष्ट करने वाली प्रलयकालीन वायु कभी भी सुमेरु को परिस्पन्दित कर सकती है क्या? क्रोध से फुंकार करने वाला आशीर्विष सर्प कभी भी गरुड़ को दृष्टिपात कर सकता है क्या? उत्तप्त घृत कभी भी अग्नि को जला सकता है क्या?

अथानन्तर उस अनल से परिवर्तित अनिल वापी के मध्य में सहस्रदल कमल में स्थित रत्नमय सिंहासन स्थिता सती शील लक्ष्मी के समीप में राम पहुँच कर भारी अनुराग से अनुरक्त चित्त होते हुए सीता को बोले –

कदाचिदपि नो भूयः करिष्याम्याग ईदृशम्।
दुःख वा ततोऽतीतं दोषं में साध्वी मर्षय।।

(पद्मपुराण – 72)

योषिदष्टसहस्राणामपि त्वं परमेश्वरी।
स्थिता मूर्ध्नि ददस्वाज्ञा मय्यपि प्रभुतां कुरु।।

(पद्मपुराण – 63)

दोषाब्धिमग्न कस्यापि विवेक रहितस्य मे।
उपसन्नस्य सुरालाध्ये प्रसीद क्रोधमुत्सृज।।

(पद्मपुराण – 70)

हे सती सीते! अब ऐसा अपराध पुनः कदाचित् नहीं करूँगा अथवा अब तुम्हारा दुःख अतीत हो चुका है। हे साध्वी! मेरा दोष क्षमा करो। तुम अष्टसहस्र स्त्रियों की परमेश्वरी हो। उनके मस्तक पर विद्यमान हो। आज्ञा दो और मेरे ऊपर भी अपनी प्रभुता करो। हे प्रशंसनीये! मैं दोषरूपी सागर में निमग्न हूँ तथा विवेक से रहित हूँ। अब तुम्हारे समीप आया हूँ। प्रसन्न हो और क्रोध का परित्याग करो। इस प्रकार राम ने अत्यन्त अनुनय, विनय से अपने दोष की क्षमायाचना की एवं समस्त राज्य के ऊपर सर्वेसर्वा होने के लिये जब प्रार्थना की उस समय आत्मवैभव प्राप्त करनेवाली मुमुक्षु सीता ने उत्तर दिया –

बलदेव प्रसादात्ते भोगा भुक्ताः सुरोपमाः।
अधुना तदहं कुर्वे जाये स्त्री न यतः पुनः।।

(पद्मपुराण – 73)

एतैर्विनाशिभिः क्षुद्रैरवसनैः सुदारुणैः।
किंवा प्रयोजनं भोगैर्मूढमानव सेवितैः।।

(पद्मपुराण – 74)

हे बलदेव! मैंने तुम्हारे प्रासाद में देवों के समान भोग भोगे हैं, इसीलिये उनकी इच्छा नहीं है। अब तो वह का करूँगी जिससे पुनः स्त्री न होना पड़े। इस विनाशी, क्षणभंगुर, आकुलतामय, अत्यन्त कठोर एवं मूर्ख मनुष्यों के द्वारा सेवित इन भोगों से मुझे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार जब सीता के कोमल, मधुर वचनरूपी वज्र राम के कर्णों में विद्ध हुआ एवं सीता के द्वारा लुंचित इन्द्रनील मणि के समान कान्ति वाले अत्यन्त कोमल केशों को राम ने देखा तब राम मूर्च्छा को प्राप्त हो पृथ्वी पर गिर पड़े। यह बड़ा आश्चर्य का विषय है। जिस राम को बड़े–बड़े राक्षसों का गगनभेदी रणहुंकार एवं सहस्रों राक्षसों के छिन्न मस्तक के विकराल केश तिल मात्र भी विचलित नहीं कर पाये थे, उस राम को आज सुकुमारी सीता की वीतराग वाणी एवं कोमल केशों ने मूर्च्छित कर दिया। सो ठीक ही है – मोह महाराजा का पराक्रम सबसे अधिक है अथवा प्रलयकालीन महाशक्तिशाली वायु द्वारा अविचलित सुमेरु क्या बालक महावीर द्वारा विचलित नहीं हुआ था? इस अवसर पर सती सीता ने अपने लक्ष्य सिद्धि के लिये किंचित् भी अवहेलना नहीं की थी।

यावदाश्वासनं तस्य प्रारब्धं चन्दनादिना।
पृथ्वी मत्यार्यया तावद्दीक्षिता जनकात्मजा।।

(पद्मपुराण – 78)

ततो दिव्यानुभावेन सा विघ्नपरिवर्जिता।
संवृत्ता श्रमणा साध्वी वस्त्रमात्र परिग्रहा।।

(पद्मपुराण – 79)

जब तक चन्दन आदि के द्वारा राम को सचेत किया जाता तब तक सीता पृथ्वीमती आर्यिका से दीक्षित हो गई। तदनन्तर देवकृत प्रभाव से जिसके समस्त विघ्न दूर हो गये थे – ऐसी पतिव्रता सीता वस्त्रमात्र परिग्रह को धारण करने वाली आर्यिका हो गई। नारी पर्याय का श्रेष्ठतम कार्य आर्यिका दीक्षा है।

जैनधर्म पतिवियोगिनी सती नारी को गृह के कोने में बैठ कर पतिवियोगजन्य शोक से असातावेदनीय कर्म को आह्वान करने की शिक्षा नहीं देता है। जो पति और पुत्रों की विरहजन्य दुःखाग्नि में जल रही थी – ऐसी मन्दोदरी महाशोक से युक्त हो अत्यन्त विह्वल हृदय हो गई। ऐसी मन्दोदरी को शशिकान्ता नामक आर्यिका ने उत्तम वचनों के द्वारा प्रतिबोधित किया।

परि देवनमिति करुणं यजमाना वाष्पदुर्दिनं जनयन्ति।
शशिकान्तयार्ययासौ प्रतिबोधं वाग्भिरुत्तमाभिरानीता।।

(पद्मपुराण – 92)

संसार प्रकृति प्रबोधनपरैर्वाक्यैर्मनोहारिभ–
स्तस्या प्राप्य विबोधमुत्तमगुणा संवेगमुग्रं श्रिता।
त्यक्ताशेष गृहस्थवेशरचना मन्दोदरी संयता,
जातात्यन्तविशुद्धधर्मनिरता शुक्लैकवस्त्रावृता।।

(पद्मपुराण – 94)

लब्ध्वा बोधिमनुत्तमां शशिनखाप्यार्यामिमामाश्रिता,
संशुद्धश्रमणाव्रतोरुविधवा जाता नितान्तोत्कटा।
चत्वारिंशदथाष्टकं सुमनसां ज्ञेयं सहस्राणि हि,
स्त्रीणां संयममाश्रितानि परमं तुल्यानि यासां रवेः।।

(पद्मपुराण – 95)

जो करुण विलाप को प्राप्त होती हुई अश्रुओं की अविरल वर्षा कर रही थी – ऐसी मन्दोदरी को शशिकान्ता नामक आर्यिका ने उत्तम वचनों के द्वारा प्रतिबोधित किया। तदनन्तर जो समस्त दशा का निरूपण करने में तत्पर शशिकान्ता आर्यिका के मनोहारी वचनों से प्रबोध को प्राप्त हो उत्कृष्ट संवेग को प्राप्त हुई थी। ऐसी उत्तम गुणों की धारिका मन्दोदरी गृहस्थ सम्बन्धी समस्त

वेष रचना त्याग कर अत्यन्त विशुद्ध धर्म में लीन होती हुई एक शुक्ल वस्त्र में आवृत्त आर्यिका हो गई। रावण की बहन चन्द्रनखा भी इन्हीं आर्या के पास उत्तम रत्नत्रय को प्राप्त कर व्रतरूपी विशाल सम्पदा को धारण करने वाली उत्तम साध्वी हुई। जिस दिन मन्दोदरी आदि ने दीक्षा ली उस दिन उत्तम हृदय को धारण करने वाली एवं सूर्य की दीप्ति के समान दैदीप्यमान अड़तालीस हजार स्त्रियों ने संयम धारण किया।

जिस प्रकार आचार्य शिष्यों को शिक्षा, दीक्षा आदि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार मुख्य आर्यिका (गणिनी) स्त्रियों की शिक्षा, दीक्षादि प्रदान करके धर्म की ध्वजा फहराती है। जब भरत ने श्री देशभूषण केवली के पास जैनेश्वरी दीक्षा धारण की उसके अनन्तर राम–लक्ष्मण से सम्बोधित कैकया निर्मल सम्यक्त्व को धारण करती हुई एवं तीन सौ स्त्रियों के साथ पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा ग्रहण कर ली।

सकाशे पृथ्वीमत्याः सह नारीशतैः स्त्रीभिः।
दीक्षां जग्राह सम्यक्त्वं धारयन्ति सुनिर्मलम्।।

(पद्मपुराण – 25)

त्रैलोक्याधिपति वीतराग भगवान् का शासन अत्यन्त सूक्ष्म एवं इहलोक–परलोक अविरोधी है। जो भव्य इस अनुशासन में अनुशासित होता है वह निश्चित रूप में त्रिलोक का शासक बन जाता है, स्वाधीनता सुख को प्राप्त कर सकता है। जो स्त्री आर्यिका दीक्षा धारण करके जैनशासन के अनुरूप आचरण नहीं करती है तथा सम्यक्त्व से रहित है वह कभी भी स्त्रीलिंग छेद नहीं कर सकती है। स्त्रीलिंग को छेद करके परम्परा से मोक्ष जाने वाली आर्यिकाओं का समाचार अत्यन्त उत्कृष्ट, आदर्श, पुनीत, रागद्वेष से रहित होता है। जैनशासन का जीव स्वरूप अनेकान्त, स्याद्वाद, निश्चय, व्यवहार को हृदयंगम करने वाली आर्यिकायें आगम के अनुसार अपना आचरण करती हैं। निश्चय से आत्मा न स्त्री, न पुरुष, न बाह्य क्रिया से प्रभावित, न लोकव्यवहार से सहित, न गुरु, न शिष्य, न पुण्य, न पाप, न व्रत समिति आदि से सहित है, तथापि आत्मा असम्यक्चारित्र से संसार में परिभ्रमण कर रहा है एवं सम्यक्चारित्र द्वारा संसार से निवृत्त होकर आत्म राज्य में रमण करता है। जिसकी अन्तरंग चारित्र शुद्धि है, उसकी अन्तरंग चारित्र के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखने वाला बाह्य चारित्र भी शुद्ध होता ही है, किन्तु बाह्य चारित्र के साथ अन्तरंग चारित्र भजनीय है। जो निश्चय चारित्र को जानता ही नहीं, किन्तु प्रमादी होकर निश्चय को ही ग्रहण

करता है, बाह्य चारित्र को अतिचारादि रहित पालन नही करता है, वह पाखण्डी, मूर्ख जैनशासन के नाममात्र अन्तर्मुक्त होकर भी वास्तविक बहिर्देश में है, जो लोक में प्रशंसा के लिये अच्छा–अच्छा मिष्ठान्न प्राप्ति के लिये अपनी प्रख्याति की अभिलाषा से पदवी प्राप्त करने के लिये, संघ–संवृद्धि के लिये आगामी इन्द्रियजन्य भोग के लिये बाह्य में निरतिचार चारित्र पालन करता है तो भी वह जैनशासन के परे है। यथाशक्ति अन्तरंग बहिरंग चारित्र पालन करने वाला ही जैनशासन का अनुयायी है, महान् आध्यात्मिक सन्त कुन्दकुन्दाचार्य जिस प्रकार समयसारादि आध्यात्मिक शास्त्रों में निश्चय रत्नत्रय को जितना महत्व प्रदान किया उससे किंचत् भी न्यून व्यवहार रत्नत्रय का महत्व प्रदान स्वरचित मूलाचार में नहीं किया है। व्यवहार कुसुमरूपी चारित्र के बिना निश्चय चारित्ररूपी फल प्राप्त होना त्रिकाल में सुनिश्चित असम्भव ही है। मुनियों के आचरण से आर्यिकाओं के समाचार कुछ विशेषतायें लिये हुए है, कारण आर्यिकाओं के वर्तमान पर्याय, शारीरिक संगठन, शारीरिक–मानसिक शक्ति भावादि मुनियों से विलक्षण हैं।

एसो अज्जाणंपि य समाचारो जहाविक्खओ पुव्वं।
सव्वाहि अहोरत्ते विभासिदव्वो जदा जोग्गं।।

(मूलाचार – 67)

मूलगुणों के अनुरूप आचरण करने को समाचार कहते हैं। दिवस एवं रात्रि सम्बन्धी मुनियों के समाचार के समान आर्यिका सम्बन्धी समाचार है। विशेष यह है कि वृक्षमूलयोग, आतापनयोग, अभ्रावकाश योगादि उन्हीं की आत्मशक्ति के परे अर्थात् अनुरूप नहीं होने के कारण निषेध है।

अण्णोण्णणूलाओ अण्णोण्णहिरक्खणाभिजुत्ताओ।
गयरोसवेरमाया सलज्जमज्जादकिरियाओ।।

(मूलाचार – 68)

आर्यिकायें मत्सर भाव को छोड़ कर परस्पर रक्षण एवं परस्पर अनुकूल अभिप्राय को लिये हुए रहती हैं। उनका मोहनीय कर्म विशेष नष्ट होने तक उस जन्य रोष, वैर, कपट आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। जिस आचरण से लोक में अपनी निन्दा होगी – ऐसे समस्त छोटे–बड़े आचरण से वे सर्वदा दूर रहती हैं। राग–द्वेष को दूर रख कर न्याय आचरण रूप मर्यादा में रहती हैं। उभयकुलानुरूप आचरणरूपी क्रिया में तत्पर रहती हैं।

अज्झयणे परियट्टे सवणे कहणे तहाणुपेहाए।
तवविणय संजमेसु य अविरहिदुवओगजुत्ताओ।।

(मूलाचार – 69)

अध्ययन किये हुए शास्त्र को पुनः अध्ययन में, कंठस्थ करने में, शास्त्र श्रवण में, उपदेश करने में, जीवादि तत्त्वों का चिन्तन, मनन में तथा अनित्यादि बारह अनुप्रेक्षाओं का मन से बार–बार विचार करने मे आर्यिकायें सतत तत्पर रहती हैं। इच्छा निरोधरूप अन्तरंग बाह्यतप पालने में, ज्ञानादि विनय पालने में, इन्द्रिय एवं प्राणी संयम पालन करने में एवं मन, वचन, काय से शुभाचरण करने में सर्वदा तत्पर रहती हैं।

अविकारवत्थवेसा जल्लमलविलित्त देहाओ।
धम्मकुलकित्तीदिक्खा पडिरूवविसुद्धचरियाओ।।

(मूलाचार – 70)

रागादि विकार को उत्पन्न करने वाले वस्त्र को धारण नहीं करती हैं। विलास रहित गमन, कटाक्षादि रहित साम्यदृष्टि, पसीना एवं धूलि से निर्मित जल्ल एवं मल्ल से सुसज्जित एवं अन्य सजावट से रहित, कुल, धर्म, कीर्ति और दीक्षा के अनुरूप निर्मल आचरण करने वाली आर्यिका होती है।

अगिहत्थमिस्सणिलये असण्णिवाए विसुद्धसंचारे।
दो तिण्णि व अज्जाओ बहुगीओ वा सहत्थति।।

(मूलाचार – 71)

जहाँ स्त्री, धन–धान्यादि परिग्रहयुक्त गृहस्थ, परस्त्री लम्पट, चोर, चुगली करने वाला, दुष्ट तथा पशुओं का अभाव है – ऐसे स्थान में आर्यिकायें दो को आदि लेकर तीन, चार आदि बहुत तीस–चालीस तक एकत्र रहती हैं। यतियों के निवासस्थान से भी आर्यिकाओं का निवास स्थान दूर रहता है। वह स्थान बाधारहित, संक्लेशरहित अथवा गुप्तसंचार करने के लिये योग्य अथवा मलोत्सर्ग करने के योग्य होना चाहिये। वह स्थान बाल, वृद्ध, रोगीजन को गमनागमन एवं शास्त्राध्ययन के योग्य होना चाहिये।

ण य परगेहमकज्जे गच्छे कज्जे अवस्सगमणिज्जे।
गणिणी मापुच्छित्ता संघाडेणेव गच्छेज्ज।। (मूलाचार)

मुनियों की वसतिका और गृहस्थ का घर दोनों परगृह कहे जाते हैं। इन परगृहों में अप्रयोजन से आर्यिकाओं का जाना निषिद्ध है। आवश्यक कार्य में

जैसे प्रतिक्रमण भिक्षा आदि के लिये जाना पड़े तो संघ की मुख्य आर्यिका अर्थात् गणिनी को पूछ कर अन्य आर्यिकाओं को साथ में लेकर जाना चाहिये।

अज्जागमणे काले ण अत्थिदव्वं तधेव एक्केण।
ताहिं पुण सल्लावो ण य कायव्वो अकज्जेण।।

(मूलाचार – 56)

आर्यिका जब संघ में धर्मकार्य के लिये आती है, तब उनके साथ मुनि (आगन्तुक मुनि) का रहना, बातचीत करना निषिद्ध है, परन्तु यदि कुछ नितान्त आवश्यक धर्मकार्य का प्रयोजन हो तो उनके साथ बोलना निषिद्ध नहीं है। यहाँ आर्यिका शब्द उपलक्षण है। अर्थात् आर्यिका के समान सम्पूर्ण स्त्रियों के साथ मुनियों का बोलना निषिद्ध है, क्योंकि जब महाव्रत से पवित्रगात्र, ब्रह्मचर्य महाव्रत को पालन करने वाली, समस्त प्रकार के श्रृंगारों से रहित, जल्ल–मल से रहित, लुंचित–मुण्डी, रूखा–सूखा भोजन करनेवाली, संसार, शरीर, भोगों से निर्विण्णा आर्यिकाओं के साथ आलाप करना मना है, तब साक्षात् रतिरूपधारी अन्य साधारण स्त्रियों के साथ बोलना किस दृष्टि से अनिषिद्ध हो सकता है?

तासिं पुण पुच्छावो एक्किस्से ण य कहिज्ज एक्को दु।
गणिणी पुरओ किच्चा जदि पुच्छइ तो कहेदव्वं।।

(मूलाचार – 57)

आर्यिका यदि अकेली कुछ प्रश्न पूछे तो अकेला मुनि उसका उत्तर नहीं दे, परन्तु यदि वह आर्यिका गणिनी के साथ आकर कोई प्रश्न पूछे तो उसका उत्तर धर्म प्रभावना के लिये दे सकता है। अन्यथा नहीं बोलना चाहिये।

तरुणो तरुणीए सह कहा व सल्लावणं च जदि कुज्जा।
आणाकोवादीया पंचवि दोसा कदा तेण।।

(मूलाचार – 58)

यदि तारुण्य पिशाचवश मुनि उत्कट तारुण्य वाली स्त्री के साथ पूर्व आचरित चारित्र बोलेगा वा हंसी, मजाक, बकवाद आदि करेगा तो वह 1. जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने के कारण आज्ञाकोप 2. अनवस्था 3. मिथ्यात्वाराधना 4. रागादि भाव उत्पन्न होने से आत्मनाश 5. ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगने से संयमविराधना ऐसे पाँच दोषों से युक्त होगा। ये दोष पापोत्पत्ति के कारण हैं। अन्य स्त्री से रागसहित वार्तालाप करना अर्थात् मोक्षरूपी स्त्री से क्रोध से वर्ताव करना है। अन्य स्त्री को सन्तुष्ट रखना अर्थात् मोक्ष स्त्री से ईर्ष्या को प्राप्त करना है।

एतामुत्तम नायिकामभिजनवर्ज्यां जगत्प्रेयसीं,
मुक्तिश्री ललनां गुणप्रणयिनीं गन्तुं तवेच्छा यदि।
तां त्वं संस्कुरु वर्जयान्यवनिता वार्तामपि प्रस्फुटं,
तस्यामेव रतिं तनुष्व नितरां प्रायेण सेर्ष्याः स्त्रियः।।

(आत्मानुशासन – 28)

हे सुखेच्छु भव्य! यह मुक्तिरूपी सुन्दर स्त्री उत्तम नायिका है। अन्यान्य स्त्री तो अत्यन्त सरलता से प्राणियों को प्राप्त हो जाती है, किन्तु मुक्तिस्त्री केवल कुलीनजन को ही प्राप्त होती है। अकुलीन, शीलरहित जनों को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होती। समस्त विश्व के लिये प्रियतमा है, जबकि साधारण स्त्री कामीजनों को ही प्यारी है। लौकिक स्त्री, सुन्दर पुरुष, धन, सम्पत्ति आदि में ही अनुराग रखती है, किन्तु मुक्ति ललना केवल उत्तमोत्तम गुणों से ही अनुराग रखती है। इस प्रकार अनुपम अद्वितीय, अनादिकाल से अप्राप्य, जरा रोगादि से सुन्दरता नष्ट न होने वाली कन्या को यदि प्राप्त करने की अभिलाषा है तो तू उसको रत्नत्रयरूप अलंकारों से विभूषित करके प्रसन्न कर। अन्य स्त्रियों के साथ बात भी मत कर। केवल तू उसके विषय में ही अतिशय अनुराग कर, क्योंकि स्त्रीजाति प्रलयंकारी है, स्वभाव से स्त्री परस्पर प्रायः ईर्ष्यालु होती है।

णो कप्पदि विरदाणं विरदीणमुवासयम्हि चिट्ठेदुं।
तत्थ णिसेज्ज उवट्टणसज्झायाहार भिक्खवोसरणं।।

(मूलाचार – 51)

निश्चय व्यवहारचारित्र के रहस्य को जानने वाले साधु जहाँ आर्यिकायें रहती हैं, वहाँ नहीं रह सकते हैं। रहने की बात तो क्या? वहाँ पर क्षणमात्र में जो कार्य होते हैं वे भी मुनियों के लिये निषिद्ध है। वहाँ बैठना, लेटना, स्वाध्याय करना, शास्त्रव्याख्यान करना, शास्त्रपारायण करना, आहार, भिक्षा, प्रतिक्रमणादि करना आदि। किसी भी मुनि को इस प्रकार विचार नहीं करना चाहिये कि मैं बुद्ध हूँ, चिरकाल से दीक्षित हूँ, शास्त्रज्ञ हूँ, आर्यिकाओं का गुरु हूँ, सबका विश्वास पात्र हूँ, आचार्य हूँ। इसीलिये मैं स्त्री सम्पर्क करूँगा तो किसी प्रकार की क्षति नहीं है। इस प्रकार मन्यमाना साधु अपने पद से च्युत हो जाता है।

थेरं चिरपव्वइं आयरियं बहुसुदं च तवसिं वा।
ण गणेदि काममलिणो कुलमपि समणो विणासेदि।।

(मूलाचार – 60)

जो चिरकाल से दीक्षित, आचार्य, सर्वशास्त्रज्ञ अर्थात् उपाध्याय हो, मासोपवासादि करने वाला हो, वृद्ध हो तो भी जब कामरूपी कराल उसके ऊपर चढ़ता है तब उपरोक्त समस्त गुण उसकी रक्षा नहीं कर पाते हैं। वह अपने पद से च्युत हो जाता है। वह अपने माता–पिता, गुरु के कुल का विनाश कर देता है।

विषयासक्त चित्तानां को वा गुणा न नश्यन्ति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्।।

(चाणक्य)

विषयासक्त चित्त वालों के क्या–क्या गुण नष्ट नहीं होते हैं? विदुषता, मनुष्यता, उच्चकुलीनता, वचन की सत्यता क्या नष्ट नहीं होती है? अर्थात् निश्चित रूप में नष्ट होती ही है।

बड़े–बड़े तपस्वी जो कि वज्र द्वारा अखण्डित, कालकूट विष द्वारा अप्रभावित, दृष्टिविष सर्प द्वारा अविचलित थे, वे भी स्त्री के वचनरूपी बाणों से विदारित, स्त्री संगतिरूप विष से मोहित एवं कटाक्षरूपी दृष्टिविष सर्प के द्वारा दंशित होकर अनन्त बार मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।

कण्ठस्थकालकूटोऽपि शम्भोः किमपि नाकरोत्।
सोऽपि दंदह्यते स्त्रीभिः स्त्रियों हि विषमं विषम।।

(आत्मानुशासन – 35)

जिस महादेव के कंठ में कालकूट विष स्थित होकर भी उसका कुछ भी अहित नहीं कर पाया, वही रूद्र स्त्रियों के द्वारा सन्तप्त किया जाता है। ठीक है – स्त्रियाँ अत्यन्त भयानक विष है। जो रूद्र विषतुल्य पूर्वसंचिक कर्मों को कठोर तपस्या के द्वारा नष्ट कर रहे थे, वे ही महादेव स्त्री द्वारा नष्ट हो गये थे। गुरु ने रूद्र को अकेला रहना एवं स्त्री सम्पर्क त्याग करने के लिये कहने पर भी विनाशकाले विपरीतबुद्धिः के कारण रूद्र माना नहीं। गुरु आज्ञा उल्लंघन के फलस्वरूप मोक्षललना को प्राप्त करने का उपाय छोड़ कर संसारवृद्धि करने वाली अबला के द्वारा बन्धन को प्राप्त हुए।

विज्जाणुवादपढणे दिट्ठफला णट्ठसंजमा भव्वा।
कदिचि भवे सिज्झंति हु गहिदुज्झियसम्ममहिमादो।।

(त्रिलोकसार – 84)

वे रूद्र विद्यानुवाद नामक पूर्व को पढ़ते हुए इहलोक सम्बन्धी फल को भोगने वाले, ग्रहण किये हुए संयम को नष्ट करने वाले, भव्य और ग्रहण किये हुए

सम्यक्त्व को छोड़ देने के महात्म्य से अनेक पर्यायों को धारण करके फिर सिद्धपद प्राप्त करेंगे। इस प्रकार चतुर्थकाल में भी महान् ज्ञानी एवं तपस्वी भी विषयरूपी डाकुओं के द्वारा ठगाये गये हैं। अन्य काल में साधारण व्यक्तियों की बात ही क्या? अतः समस्त आर्य एवं आर्यिकाओं को निष्प्रमाद होकर संयम पालन करना चाहिये।

वज्जेह अप्पमत्ता अज्जासंसग्गमग्गिविससरिसं।
अज्जाणुचरो साधु लहदि अवित्तिं खु अचिरेण।।

(भगवती आराधना – 380)

हे साधो! प्रमादरहित होकर अग्नि और विष के सदृश अत्यन्त भयंकर आर्यिका का संसर्ग त्याग करो। रत्नत्रय को हरण करने वाली यह संगति शीघ्र ही संसार में अपकीर्तिरूपी विषैली लता का प्रसार करती है। संसार में साधारण मिथ्यादृष्टि, दीन–हीन, अज्ञानी, असंयमी भी यदि परस्त्री, वेश्या, कुलटा स्त्री सहवास करे तो कलंकरूपी अपकीर्ति एवं दण्ड के पात्र होते हैं। फिर यदि महाव्रती, ज्ञानी, साधु, धर्मगुरु, उपदेशक साधुजन, महाव्रती, ब्रह्मचर्य महाव्रत को धारण करने वाली गुर्वी आर्यिकाओं के साथ सहवास करेंगे तो क्या पूज्य, प्रशंसा के पात्र होंगे?

एक द्रव्य अन्य द्रव्य के ऊपर महान् प्रभाव डालता है, भले वह शुद्ध या अशुद्ध हो, परन्तु शुद्ध में शुद्ध रूप एवं अशुद्ध में अशुद्धरूप प्रभाव डालता है। शुद्ध द्रव्यों की वर्तना भी कालनिमित्तक होती है। अनन्त शक्ति वाले ऊर्ध्वगमन करने वाले सिद्धों के भी गमन में एवं ठहरने में अत्यन्त उदासीन धर्म, अधर्म का निमित्तपना आवश्यक होता है। कर्मों का उदय, उपशम, क्षयादि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के ऊपर निर्भर करता है। अन्तरंग–बहिरंग कारणों से द्रव्य में परिवर्तन होता है। कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता है। एक भी कारण के अभाव में कार्य नहीं हो सकता है। प्रतिबन्धक का अभाव होने पर सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थकारण कहते हैं। समर्थकारण के होने पर अनन्तर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है। भिन्न–भिन्न प्रत्येक सामग्री भले वह निमित्त कारण अथवा उपादान कारण को असमर्थ कारण कहते हैं। असमर्थ कारण कार्योत्पत्ति का नियामक नहीं है। अतः आर्य एवं आर्यिकाओं का कर्तव्य है कि जिन–जिन कारणों से विषयकषाय उत्पन्न होती है, संयम में बाधा उत्पन्न होती है, लोकनिन्दा होती है, उन–उन कारणों से दूर रहना चाहिये। कारणों को सर्वदा पृथक्–पृथक् रखने के लिये पुरुषार्थ करना

चाहिये। जो व्यक्ति कारणों को मिलाते जाये एवं कार्य उत्पन्न न होने की आशा रखे, वह व्यक्ति महान् मूर्ख है। उसकी आत्मोन्नति कदापि नहीं हो सकती है। एक ही उपादान कारण विभिन्न निमित्त कारणों के द्वारा भिन्न–भिन्न रूप परिणमित हो जाता है। जैसे एक ही उपादानरूप जल बाह्य निमित्तों के कारण वाष्प, बर्फ, गरम जल, शीतल जल, लाल जल आदि रूप परिणमन कर जाता है। एक ही आत्मा भिन्न–भिन्न निमित्त कारणों के द्वारा अनादि से विभिन्न रूप परिणमन कर रहा है। यदि उस बहिरंग–अन्तरंग निमित्त को हटा दिया जाये तो वह जीव एक शुद्धरूप ही रह जायेगा। **बाह्येतरोपाधि समग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।** अर्थात् कार्योत्पत्ति के लिये बाह्य एवं अभ्यन्तर निमित्त उपादान दोनों कारणों की समग्रता, पूर्णता ही द्रव्यगत निज स्वभाव है। **पुग्गलकम्मनिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि** जिस प्रकार जीव के भावों के निमित्त से पुद्गलों की कर्मरूप पर्याय होती है, उस प्रकार पुद्गल के निमित्त से जीव रागादि रूप से परिणमन करता है। मुनि एवं आर्यिका परस्पर निमित्त उपादान कारण है। इस प्रकार एकान्त नहीं समझना कि मुनि के लिये आर्यिका निमित्त है, किन्तु आर्यिका के लिये मुनि निमित्त नहीं है। एक हाथ से कभी ताली नहीं बजती है। एक पार्श्व वाली भित्ती अर्थात् दीवार, एक दिशा वाली रेखा कभी भी नहीं होती है।

जदि वि सयं थिरबुद्धी तहावि संसग्गि लद्धपसराए।
अग्गिसमीवे व हादं विलेज्ज चित्तं खु अज्जाए।।

(भगवती आराधना – 333)

मुनि यदि स्थिर प्रज्ञा वाला भी होगा तो भी आर्यिका के संसर्ग से चंचल चित्त वाला हो जायेगा। सो ठीक ही है – क्या शीतऋतु में भी अनेक दिनों से घट्ट किया गया घृत अग्नि के संसर्ग से तरलता को प्राप्त नहीं होता है?

सव्वत्थ इत्थिवग्गम्मि अप्पमत्तो सया अवीसत्थो।
णित्थरदि बंभचेरं तव्विवरीदो ण णित्थरदि।।

(भगवती आराधना – 334)

कण्णं विधवं अंतउरियं तह सइरिणी सलिंग वा।
अचिरेणल्लियमणो अववादं तत्थ पप्पोदि।।

(मूलाचार – 61)

स्त्री चाहे बालिका, विवाह योग्य कुमारी, विवाहिता, तरुणी, विधवा, सौभाग्यवती, वृद्धा, सुरूपा, कुरूपा, अन्तःपुर में रहने वाली रानी अथवा विलासिनी स्त्री,

परपुरुषों के साथ गमन करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री अथवा अपने मत की अथवा अन्य मत में स्थित दीक्षा जिसने धारण की है – ऐसी आर्यिकादि व्रतस्थ स्त्री इस प्रकार वृद्धा माता, कन्या, सहोदरी, गुर्वी आदि समस्त स्त्रियों के साथ संसर्ग, सम्भाषण करने वाला मुनि पाप, अपवाद, निन्दा एवं अपकीर्ति को प्राप्त होता है। जो मुनि समस्त स्त्रियों में प्रमादरहित होकर उनमें विश्वास न कर प्रवृत्ति करता है, वही साधु आजन्म अपना ब्रह्मचर्य व्रत निर्दोष पालन कर सकता है। इससे विपरीत जो मुनि स्त्रियों में विश्वास, संसर्ग करता है, वह अपना अमूल्य ब्रह्मचर्य व्रत आजन्म नहीं निभा सकता है।

जिन आर्यिकाओं व मुनियों ने समस्त गृह, धन–धान्य, स्त्री, स्वामी, पुत्र, कन्या आदि का त्याग करके जितेन्द्रिय होकर आत्मचिन्तन के लिये वनमार्ग का अवलम्बन लिया, किन्तु वन में भी वे परस्पर संसर्ग स्थापना करते हैं तो वह वन वन न रह कर गृह में परिणत हो जायेगा एवं आत्मचिन्तन कामचिन्तन में परिणत हो जायेगा। जिस प्रकार श्लेष्मा में पतित मक्खी फड़फड़ा कर उसी में लिपट कर कष्ट उठाती है, उसी प्रकार परस्पर संसर्ग किये हुए साधु–साध्वी उससे छूट नहीं सकते हैं। अन्यान्य पाप से अब्रह्म पाप का परिणाम अत्यन्त निकृष्ट होता है। कामेच्छु प्राणी मर कर परभव में नरक में उत्तप्त लौह स्त्री को भोग करते हैं। बिना कारण से बन्धन, छेदन, ताड़न प्राप्त करते हैं, नपुंसक पर्याय में जन्म लेकर हर समय भट्टी की अग्नि के समान कामाग्नि से सन्तप्त होते हैं। अन्यान्य पापक्रिया के समय भावहिंसा एवं द्रव्यहिंसा दोनों होना भजनीय है, किन्तु मैथुनरूप पाप के समय दोनों पाप होते ही हैं।

यद्वेदराग योगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात्।।

(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय – 107)

चारित्रमोहनीय कर्म के भेदरूप वेद तथा राग की उत्तेजना से स्त्री पुरुषों का सहवास होना अब्रह्म है। अब्रह्म में सर्वत्र हिंसा ही हिंसा है, क्योंकि 1. राग के उत्पन्न होने से आत्मा के जो परिणाम ज्ञानानन्द, निर्विकार, शान्तरसमय हैं उनका घात होने से भावहिंसा होती है। 2. जिस प्रकार तिलों की नली में तप्त लोहे की छड़ डालने से तिल जल कर नष्ट होते हैं, उसी प्रकार **मेहुणसव्वारूढो मारइ णवलक्ख सुहुम जीवाइं** एक बार मैथुन करने वाला योनि में स्थित नव लाख जीवों को मारता है। शारीरिक शक्ति का क्षय होने से द्रव्यहिंसा भी होती है। जब मुनिराज क्षपक श्रेणी चढ़ते हैं उस समय असंख्यात गुणा बादरकायिक

निगोदिया जीव मरते हैं, परन्तु मुनिराज को हिंसा का पाप नहीं लगता है। यहाँ पर अनन्त द्रव्यहिंसा होने पर भी मुनिराज राग–द्वेष, प्रमादरहित होने के कारण अहिंसक रहे। इस क्षेत्र में द्रव्यहिंसा हुई, भावहिंसा नहीं हुई, परन्तु जहाँ मैथुन है वहाँ दोनों हिंसायें होगी ही। कोई कामुक यदि किसी कारण वशतः भोगांग को छोड़ कर अन्य अंग से काम सेवन करके अपने को अहिंसक मानेगा तो वह कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है। कारण **तत्रापि भवति हिंसा रागाद्युत्पत्ति तन्त्रत्वात्।** अर्थात् वहाँ भी हिंसा अवश्य सम्भव है, क्योंकि बिना तीव्र राग के अनंगक्रीड़ा नहीं हो सकती है। कोई पाखण्डी ज्ञानी विषयासक्त होकर विषयभोग करते हुए विचार करेगा कि –

उपभोगमिंदियेहिं दव्वाण चेदणामिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठि ते सव्वं णिज्जर णिमित्तं।।

(समयसार – 93)

सम्यग्दृष्टि जीव जो इन्द्रियों के द्वारा चेतन और अचेतन द्रव्य का उपभोग करता है वह सब ही निर्जरा के निमित्त हैं, परन्तु उस मिथ्यावादी कुज्ञानी को ज्ञात नहीं है कि **सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञान वैराग्यशक्तिः।** अर्थात् सम्यग्दृष्टि नियम रूप से ज्ञान वैराग्य शक्ति से सहित होता है। रोगजन्य पीड़ा को दूर करने के लिये जिस प्रकार रोगी बिना प्रेम से औषधि व्यवहार करता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि कर्मजन्य रोग को दूर करने के लिये बिना राग से भोगोपभोग का सेवन करता है, परन्तु **येनांशेन सुदृष्टिज्ञानं चारित्रं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।** एवं **येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति।** जिस अंश में राग है, उस अंश में बन्धन है। अतः भोग में कभी भी अबन्ध वा निर्जरा नहीं है, किन्तु जिस अंश में विरागता है, उस अंश में अबन्ध वा निर्जरा है। अतः मुमुक्षुओं का कर्तव्य है कि वे परिग्रह, लोकेष्णा, नाम, ख्याति, पूजा, उपाधि, उपकरण, श्रावक, शिष्य, संस्थान, संघ, स्त्री, आर्यिका आदि समस्त परसमय से वीतरागी रहे। तब ही मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण हो सकती है। कोई अज्ञानी क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, श्रावक, श्राविका यह विचार करें कि आचार्यों ने विशेष करके महाव्रतियों के लिये भगवती आराधना, मूलाचार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड आदि में स्त्रीसंसर्ग के दोषों का वर्णन किया है, किन्तु यह वर्णन हम लोगों के लिये नहीं है। अतः हमारे लिये यह नियम नहीं है। उनका यह विचार इस प्रकार है जिस प्रकार कि कोई मिथ्यादृष्टि विचार करे कि छठे गुणस्थानवर्ती मुनि ही प्रमादी है, अतः वह प्रमाद के कारण हिंसक है। मैं तो मुनि नहीं हूँ, अतः मेरा प्रमत्त

गुणस्थान नहीं होने के कारण मैं अप्रमत्त अर्थात् अप्रमादी होने से अहिंसक हूँ। जिस अग्नि से बड़ी–बड़ी शिलायें पिघल जाती हैं, वहाँ सामान्य घृत की बात ही क्या? अतः समस्त पुरुषों का कर्तव्य है कि यथा नाम तथा गुण वाली स्त्रियों से भयभीत होकर दूर ही रहे। 1. स्त्री पुरुष के वध का विधान रचती है, इसीलिये उसकी सार्थक संज्ञा वधु है। 2. पुरुष में दोषों का संग्रह करती है, इसीलिये इसे स्त्री कहते हैं। 3. नर की सबसे बड़ी शत्रु होने से नारी संज्ञा प्राप्त है। 4. पुरुष को प्रमादी बनाती है, अतः प्रमदा है। 5. पुरुष के लिय अनेक अनर्थों को लाती है अथवा उनमें लीन हो जाती है, सो उसे विलया पद प्राप्त है। 6. नरकादि दुःखों के साथ सम्बन्धित करती है, इसीलिये विषकुम्भ, पयोमुख वाली ललना को लालित्य संज्ञा युवती अथवा योषा प्रदान की गई। 7. इसके हृदय में धैर्यरूपी बल नहीं होता, इस कारण अबला नाम से अलंकृत है। 8. कुमरण (अकालमरण, दुःखमरण) के कारणें को उपस्थित करने वाली कुमारी है। 9. यह स्वयं के दोष छिपाती है एवं पुरुष के ऊपर दोषारोपण करती है, इसीलिये सुप्रसिद्ध नाम महिला है। इस प्रकार सार्थक संज्ञा वाली अष्टोत्तर सहस्रों नाम धारण करने वाली विश्वव्यापिनी आदि शक्ति महामाया से क्षुद्र शक्तिधारी नर सर्वदा भयभीत ही रहे। अन्यथा विनाश अनिवार्य है।

अतः आर्यिकायें मुनियों की वसतिका से स्वतन्त्र एक वसतिका में न अति दूर न अति निकट वास करती हैं। गणिनी की अनुज्ञा बिना कोई भी कार्य नहीं करती हैं। गणिनी का पूर्ण कठोर अनुशासन उनके ऊपर रहता है। साधारण समस्त मुनियों के साथ उनका विशेष किसी प्रकार का संसर्ग नहीं रहता है। जो विशिष्ट मुनि हैं, वे ही आर्यिकाओं को प्रतिक्रमणादि का उपदेश एवं प्रायश्चित्त आदि देते हैं।

पियधम्मो दिढधम्मो संविग्गो वज्जभीरु परिसुद्धो।
संगहणुग्गहकुसलो सददं सारक्खणाजुत्तो।।

(मूलाचार – 62)

आर्यिकाओं का गणधर इन गुणों को धारण करने वाला होता है। यथा – 1. प्रियधर्मा :– उत्तम क्षमादिक धर्म अथवा चारित्र जिसको प्रिय है अर्थात् उपशमादि धर्मों से जो युक्त है। 2. दृढ़धर्मा :– जो धर्म में दृढ़ विचार रखने वाला हो। 3. संविग्न :– धर्म और धर्मफल में अतिशय उत्साह युक्त अर्थात् हर्षयुक्त हो। 4. अवद्यभीरु :– पापों से बचने वाला। 5. परिशुद्ध :– पूर्णरूप से शुद्ध अर्थात् जिसका चारित्र अखण्डित है। 6. संग्रहानुग्रह कुशल :– संग्रह (दीक्षा)

पापों से छुड़ाने वाला एवं धर्म में लगाने वाला उपदेशादि से शिष्यों के ऊपर उपकार करने वाला तथा शिष्यों का संग्रह (उपर्युक्त मार्ग में लगाने वाला) योग्य ऐसे व्यक्ति को दीक्षा देकर शिष्य बनाना व उनको सम्यक् शास्त्रोपदेश देकर विद्वान् तथा सदाचारयुक्त करने वाला। 7. सतत सारक्षणा :– पाप क्रियाओं से निवृत्ति को सारक्षणा कहते हैं। जो स्वयं आरम्भ, परिग्रह, स्त्री अनुराग से रहित हो एवं शिष्यों को हितोपदेश देता है **आप तरे पर तारहिं** ऐसा गणधर आर्यिकाओं को प्रतिक्रमणादिकों का उपदेश देने में योग्य है। अन्यथा **आप मरे पंडा ले डूबे यजमान** के समान जो स्वयं कुमार्ग में है, वह यदि आर्यिकाओं का गणधर बनेगा तो स्वयं पापधर बनेगा एवं आर्यिकाओं को संसारधारिणी बना देगा।

गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पको दुहल्लो य।
चिरपव्वइदो गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि।।

(मूलाचार – 63)

8. गंभीर :– जो रत्नाकर के समान अगाध गुणों का धारक होने से गम्भीर है। 9. दुर्द्धर्ष :– जिसका अन्तःकरण पापों से रहित होने के कारण कर्मों को नष्ट करने रूप वीरता से सहित एवं निर्भय है। 10. मितवादी :– हित, मित, प्रियभाषी। 11. अल्पकौतुहली :– समस्त स्वमत तथा परमत के सिद्धान्तों को जानने से कर्म की विचित्रता में, गूढ़ प्रश्न में, अलौकिक घटना में जिसको थोड़ा विस्मय होता है। जिसके मन में कार्य–कारण सम्बन्ध ज्ञान शीघ्र ध्यान में आने से जिसका आश्चर्य नष्ट होता है अथवा शिष्यादि के दोष मालूम होने पर भी अन्य किसी के समक्ष प्रकट नहीं करता है, क्योंकि यदि गुरु अन्य के सम्मुख दोष कह दे तो शिष्य लज्जादि कारणों से कुकृत्यादि कर सकता है अथवा गुरु निन्दा करेगा एवं संघ छोड़ कर अन्यत्र चला जायेगा। 12. चिरप्रव्रजित :– दीर्घकाल से जिसने व्रत धारण किया है अर्थात् जो गुणों से ज्येष्ठ श्रेष्ठ है। वय में वृद्धता, चित्त में शुद्धता, ध्यान में लीनता, चारित्र में तत्परता, वचनों में गम्भीरता, गुणों में श्रेष्ठता होनी चाहिये, किन्तु वय में वृद्धता, चित्त में कलुषता, ध्यान में चंचलता, चरित्र में प्रमादता, वचनों में पटुता, गुणों में दरिद्रता नहीं होनी चाहिये। 13. गृहितार्थ :– पदार्थों का स्वरूप सूक्ष्मता से जानने वाला और चारित्र, प्रायश्चित्तादिकों के स्वरूप का ज्ञाता आदि महान् गुणों से विभूषित महामुनि आर्यिकाओं का गणधर होता है। यदि उपरोक्त गुणों से रहित मुनि आर्यिकाओं के गणधरपद पर आसीन होगा तब महान् अनिष्ट आकर धर्म पर आसीन हो जायेगा।

एवं गुणवदिरित्तो जदि गणधरित्तं करेदि अज्जाणं।
चत्तारि कालगा से गच्छादि विराहणा होज्ज।।

(मूलाचार – 64)

उपर्युक्त गुणों से मुक्त मुनि यदि आर्यिकाओं का गणधरत्व धारण करेगा तो उसके 1. गणपोषण, 2. आत्मसंस्कार, 3. सल्लेखना, 4. उत्तमार्थ ऐसे चार काल नष्ट होंगे अथवा 1. छेद, 2. मूल, 3. परिहार, 4. पारंचिक ऐसे चार प्रायशिचित्त गणधर को ग्रहण करने पड़ेंगे, क्योंकि अनधिकृत चेष्टा करने का यह फल है। ठीक ही है – क्या मूषक मार्जार की रक्षा करने का पदाधिकारी बनेगा तो उसका निवास यमालय में नहीं होगा? अथवा चार महिने तक कांजी भोजन करके उत्तेजित इन्द्रियों को निस्तेज करना होगा। अथवा मुनियों के समूहरूप गच्छ निर्गुणी गणधर की आज्ञा नहीं मानेगा। जिससे गच्छ का नाश होना अनिवार्य है। सर्व मुनि स्वच्छन्दी होंगे, क्योंकि **यथा राजा तथा प्रजा** के अनुसार श्रावक व मिथ्यादृष्टि भी विराधित होंगे व विरोध भी करेंगे। अथवा गच्छ और आत्मा का नाश होगा। **अप्पं परं च जुंजइ सो आइरियो मुणि णेयो।** अर्थात् जो अपने को और दूसरों को पंचाचार में लगाता है वहीं मुनि आचार्य परमेष्ठी है। अन्य मुनि इसके पदाधिकारी नहीं है। जीव का अनादि का संस्कार है जो दूसरों के ऊपर तो आचार्यपना करता है, परन्तु स्वयं के ऊपर नहीं करता है। इसी प्रकार स्वच्छन्दी मुनि दूसरों को अनुशासित नहीं कर सकता है। जो दूसरों को अनुशासित करना चाहता है, सर्वप्रथम वह स्वयं अनुशासित रहे।

Who can't control himself he can't control others. It is very easy to control others, but it is very difficult to control himself.

आर्यिका उपर्युक्त अनुशासन में रह कर निन्दनीय कार्यों को त्याग करें।

रोदणण्हावण भोयण पयणं सुत्तं च छव्विहारंभे।
विरदाण पादमक्खण धोवण गेयं च ण वि कुज्जा।

(मूलाचार – 73)

स्व वसतिका में अथवा अन्यस्थान में दुःखार्त्त को देख कर रोना, अश्रु मोचन करना, बालकादि को स्नान कराना, उनको जिमाना, रसोई बनाना, कपड़ा सीना, सूत कातना, छह प्रकार के आरम्भ आदि कार्य आर्यिकाओं को करना निषिद्ध है। बालक को खिलाने से उसके माता–पिता मेरे ऊपर प्रेम करके अच्छा–अच्छा माल खिलायेंगे – इस प्रकार भाव रख कर भी बालक को खिलाना आदि कार्य

नहीं करती है। श्रावक–श्राविका को कार्य में सहाय करने से वे हमको सहाय करेंगे, अच्छा आहार देंगे, संघ की व्यवस्था करेंगे इस प्रकार की अभिलाषा से भी वह आर्यिकायें गृहस्थों को कार्य में सहायता नहीं करती हैं व समस्त प्रकार के आरम्भ परिग्रह की त्यागी वीतराग पथ की पथिका आर्यिका को यह सर्व कार्य करना महान् लज्जा एवं निन्दा का विषय है। मुनियों के चरण धोना, उनको तेल लगा कर अभ्यंग स्नान करना, हाथ–पैरों में मालिश करना, गीत गाना इत्यादि कार्यों का निषेध है। ये क्रियायें करने से आर्यिकाओं की लोकनिन्दा, संयम में दोष लगता है। जिस कार्य में संयम बाधित नहीं होता है, किन्तु लोकनिन्दा होती है ऐसे कार्य भी आर्यिकाओं को नहीं करना चाहिये। नीति है **यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं ना करणीयं नाचरणीयम्।** लोकनिन्दा से भी बचना चाहिये। लोकनिन्दा सहित जीवन उसी प्रकार है जिस प्रकार कुत्ते की जूठन खाकर जीवित रहना।

पाणियणयणं छेणं गिहसोहरणं च गेहसारमणं।
कुट्टावलिप्पणं कुट्टविदे एदंतु छव्विहारंभो।।

(मूलाचार – 74)

1. पानी लाना, 2. पानी छानना, 3. घर का कूड़ा कचरा बाहर फैंक कर घर साफ करना, 4. गोबर आदि से घर लीपना, सम्मार्जन करना, 5. भित्ती लीपना, 6. भित्ती को साफ करना ऐसे छह प्रकार से आरम्भ आर्यिकाओं को नहीं करना चाहिये। इस प्रकार कार्य करेगी तो वह आर्यिका कैसे रहेगी? वह विशिष्ट न होकर साधारण स्त्री बन जायेगी। अतः इस प्रकार के कार्य नहीं करना चाहिये।

महाव्रत से पवित्रांगा आर्यिकायें **रांड को लगाव नहीं सांड को पथा नहीं।** इस न्याय के अनुसार अनुशासन विहीन होकर बिना प्रयोजन यत्र तत्र अकेली नहीं घूमती है। भिक्षा, देववन्दनादि क्रिया के लिये आगमादेश के अनुरूप प्रवृत्ति करती हैं।

तिण्णि व पंच व सत्त व अज्जाओ अण्णमण्णरक्खाओ।
थेरोहिं संहतरिदा भिक्खाय समोदरंति सदा।।

(मूलाचार – 74)

3 अथवा 5 अथवा 7 आर्यिकायें परस्पर में रक्षण करने का अभिप्राय मन में धारण करती हुई वृद्ध आर्यिकाओं के पीछे–पीछे अनुगमन करती हुई भोजन के लिये ईर्यासमिति पूर्वक गमन करती हैं। रास्ते में चार हाथ जमीन निरीक्षण, अन्य दिशा, विदिशा, मकान, दुकान, बाजार, पुरुष, स्त्री, बालक आदि को

निरीक्षण किये बिना सतर्क होकर गमन करती हैं। इस प्रकार देववन्दनादिक क्रिया में उपर्युक्त प्रवृत्ति होती है।

आर्यिकायें गणधर एवं गणिनी के अनुशासन में रह कर अन्य समस्त जनों का संसर्ग त्याग कर देती है। अन्यान्य समस्त संसर्ग त्याग होने पर भी आलोचना, स्वाध्याय, वन्दना आदि आवश्यक कार्यों में जो मुनि आर्यिकाओं का सम्पर्क होता है, वह भी मर्यादापूर्ण एवं आगमानुसार होता है। सर्वज्ञप्रणीत आगम में प्रत्येक विषय में रहस्य भरा हुआ है। छद्मस्थों को उस रहस्य की वास्तविकता का ज्ञान नहीं होने पर भी उसके ऊपर विश्वास रखें एवं उस रूप आचरण करें। जो समस्त आगम पर विश्वास करता है, किन्तु एक अक्षर को विश्वास नहीं करता है, वह अश्रद्धानी (मिथ्यादृष्टि) है।

पंच य सत्त हत्थे सूरी अज्झावगो य साधु य।
परिहरिऊणज्जाओ गवासणेणेव वंदंति।।

(मूलाचार – 75)

आचार्य को 5 हाथ दूर से, उपाध्याय को 6 हाथ दूर से तथा साधु को 7 हाथ दूर से गवासन से ही बैठ कर वन्दना करती हैं। आलोचना, अध्ययन, स्तुति इसकी अपेक्षा भेद समझना चाहिये। जैसे आलोचना करते समय आचार्य से 5 हाथ दूर रह कर आर्यिका आलोचना करें। 6 हाथ दूर रह कर आर्यिका को उपाध्याय से अध्ययन करना चाहिये तथा साधु से 7 हाथ दूर रह कर उसकी स्तुति करें। उपर्युक्त कठोर अनुशासन में रहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वे दुःखी एवं पराधीन रहती हैं। यह तो सुख एवं स्वाधीनता का उपाय है। जैसे सुवर्ण को अग्नि का ताप एवं सुवर्णकार के घन के ताड़न के फलस्वरूप अलंकार बन कर नवयुवती को भोगता है, उसी प्रकार साधु–साध्वी अनुशासन में शासित होकर मोक्षरूपी ललना को प्राप्त करते हैं।

एवं विधाण चरियं चरंति जे साधवो य अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।

(मूलाचार – 76)

एवंविध जो साधु एवं आर्यिकायें प्रवृत्ति करते हैं, वे जगत् के द्वारा सम्मान, कीर्ति और सुख प्राप्त करते हैं और अन्त में मुक्ति सुख को प्राप्त करते हैं।

प्रत्येक द्रव्य अपने–अपने योग्य स्थान में ही सुन्दरता को प्राप्त होते हैं। जैन धर्म जो द्रव्य जैसा है, उसे उसी प्रकार वर्णित करता है और उसी को उसकी

योग्यता के अनुरूप अधिकार देता है, योग्य अधिकार से किसी को भी वंचित नहीं करता है एवं अनधिकृत चेष्टा करने की भी अनुमति नहीं देता है। जिसकी जितनी योग्यता होती है वह उतना ही कार्य करें एवं भविष्यत् में अपनी योग्यता जिस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होगी उसी प्रकार पुरुषार्थ करें। पुनः जब योग्यता वृद्धि हो जायेगी उसी के अनुरूप कार्य करें। जो कार्य गृहस्थ के लिये योग्य है वह कार्य साधु के लिये अयोग्य हो सकता है। गृहस्थ का संस्कार एवं अनादि के संस्कार अत्यन्त परिचित, श्रुत, अनुभव एवं बार–बार भावित होने के कारण Practice makes man perfect अर्थात् अभ्यास मनुष्यों को दक्ष बना देता है के अनुसार सांसारिक संस्कार में समस्त प्राणी Specialist दक्ष है, परन्तु एकत्व विभक्त, सच्चिदानन्द, शान्तरस परिपूर्ण समस्त संस्कार से रहित आत्मा के अनुरूप आचरण अभी तक जीवों के लिये अत्यन्त अपरिचित, अश्रुत, अननुभवन होने के कारण सम्यक्चारित्र अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार नारकी जीव **वयं शुभं करिष्यामः** इस प्रकार उद्यम करने पर भी अशुभ ही विक्रिया उत्पन्न होती है। **वयं सुखहेतूनुत्पादयामः** इस प्रकार सुख के हेतु को उत्पन्न करने के लिये उद्यम करते हैं, किन्तु दुःख का हेतु ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार पूर्व संस्कार, कर्म के कारण दुःमन, वचन, काय की प्रवृत्ति सरलता से हो जाती है, परन्तु अशुभ मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकना ही तो तपस्या है, न कि कर्म के अनुरूप परिणमन करना तप है। केवल पींछी, कमण्डलु धारण करना तपस्या नहीं है। पूर्वोपार्जित कर्म के कारण एवं चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से इच्छा होती है। उस इच्छा के अनुरूप परिणमन नहीं करना ही **इच्छा निरोधस्तपः** है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त चारित्र पत अर्थात् पतन है। गृहस्थ अवस्था में जो असेवनीय नहीं है वही साधु अवस्था में असेवनीय हो जाता है, क्योंकि वह त्यक्त है, त्यक्त खाद्य को (उल्टी, वान्ति) पुनः सेवन करने वाला मनुष्य दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु त्यक्त पाप को पुनः सेवन करने वाले अनेक मनुष्य देखे जाते हैं। इससे बड़ा आश्चर्य विश्व में न भूतो न भविष्यति।

It is often said that dirt is matter in the wrong place. Sand is dirt if it is in your eyes, but it is not dirt on the sea-shore. Oil is dirt if it is on your face, but not if it is on the piston of a motor bicycle.

हम कह सकते हैं कि अयोग्य स्थान में वस्तु असेवनीय हो जाती है। बालु यदि तुम्हारी आँख में है तो वह अनुपादेय है, किन्तु वही बालु यदि समुद्र के

तीर में है तो अत्यन्त सुन्दर अर्थात् उपादेय है। यदि पेट्रोलतेल तुम्हारे मुख में है तो वह असुन्दर है, परन्तु यदि वही तेल मोटरसाइकिल में है तो सुन्दर है।

परां कोटिं समारूढौ द्वावेव स्तुतिनिन्दयोः।
यस्त्यजेत्तपसो चक्रं यस्तपो विषयाशया।।

(आत्मानुशासन – 164)

जो नृलोक के सर्वोच्च अभ्युदय स्वरूप चक्रवर्ती जैसी विभूति को प्राप्त करके भी वस्त्र रहित शरीर, गृह रहित वन, पात्र रहित भोजन, भिक्षा आहार का आश्रय करके उस विभूति को निष्टवन (थूंक) के समान त्याग कर देता है, वह त्रिलोक में सर्वोच्च स्तुति के योग्य है, परन्तु जो कारण पाकर त्रैलोक्याधिपतित्व पद प्राप्त करने का उपाय छोड़ कर तुच्छ वान्ति के समान विषयों को भोगने के लिये उद्यत होता है उससे बड़ा निन्दा का पात्र कोई नहीं है। हे साधो! तुम प्रत्येक समय सजग रहो। सांसारिक प्राणी प्रमादी होने पर उनकी किंचित् भी क्षति नहीं होगी, क्योंकि वे सब दरिद्र हैं। उनके पास कोई सम्पत्ति ही नहीं है तो चुराया क्या जायेगा? परन्तु तुम तो महान् धनी हो। तुम्हारे पास तीन लोक को उद्योतन करने वाला त्रिरत्न है। अनादिकाल से अप्राप्य तुम्हारी निधि तुमको अत्यन्त कठिनता से प्राप्त हुई है। यदि तुम किंचित् भी प्रमाद करोगे तो विषयचोर तुमको पुनः निर्धनी बना देंगे। बहिर्शत्रु तब तक विपक्ष को परास्त नहीं कर पाता जब तक विपक्ष का कोई अन्तर्शत्रु उसको सहायता नहीं करता। वस्तुतः अन्तर्शत्रु ही वास्तविक शत्रु है। अतः हे साधो! तुम्हारा यदि उपवास, रसत्याग, आतापनयोग, अभ्रावकाशयोग आदि कायक्लेश करने की शक्ति नहीं तो मत करो, परन्तु मन के द्वारा साध्य, अन्तरंग तप स्वरूप, विषयकषायों को साध्य नहीं करते हो तो तुम्हारा महान् अज्ञान के साथ–साथ महान् प्रमाद है, परन्तु बड़े आश्चर्य का विषय है कि महान् कठोर तपस्या करने वाले साधु भी अत्यन्त सरल, साध्य अन्तरंग तपस्या को नहीं कर पाते हैं।

योग्य आचार्य के द्वारा योग्य शिष्य को योग्य व्रत देना चाहिये। एक समय आधुनिक युग के मुनि धर्म संस्थापक, धर्म दिवाकर आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के पास एक व्यक्ति आकर मन, वचन, काय से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान करने के लिये प्रार्थना की। उस अवसर पर पंडित सुमेरचन्द जी दिवाकर ने महाराज को अनुनय किया कि महाराज जी! यह व्यक्ति सुयोग्य है। इसे ब्रह्मचर्य व्रत दे दीजिये। महाराज ने उस व्यक्ति से कहा कि तुम्हारा काय से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत है। पंडित जी ने महाराज जी की व्रत प्रदान करने की

पद्धति को देख कर आश्चर्य से उसका कारण जानने की जिज्ञासा की। महाराज जी ने उत्तर दिया इस व्यक्ति की काय से ही ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की योग्यता है, मन से, वचन से नहीं। अतः मैंने भी उसे उसकी योग्यता के अनुरूप व्रत प्रदान किया है। व्रत ग्रहण के बाद यदि व्रत में दोष लगाते हैं तो महान् पाप बंध होता है। अतः योग्य गुरु का कर्त्तव्य है कि वह योग्य शिष्य को योग्य व्रत प्रदान करें।

अथानन्तर पंडित जी ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज! यदि कोई साधु बन जाने के बाद व्रतों में शिथिलाचार लाये तो साधु के प्रति श्रावक का क्या कर्तव्य है? महाराज जी ने उत्तर दिया – ऐसे साधु को पहले धर्ममार्ग में दृढ़ता से चलने के लिये उपदेश देना चाहिये, क्योंकि यह सम्यक्त्व का उपगूहन अंग है। प्रमादवश साधु का कोई दोष हो गया हो तो वह पुनः दोष नहीं करेगा। ऐसा नहीं कि साधु के प्रति ईर्ष्या करके उसके दोष के तिल का ताल करके प्रपोगंडा करना। जिस प्रकार सीता के जीव ने पूर्वपर्याय में किया था। उसके फलस्वरूप बिना कारण के निन्दा की पात्र बनी। मुनिनिन्दा सबसे बड़ा पाप है। इससे अन्य धर्मावलम्बी निष्कलंक जैनधर्म से घृणा करेंगे। इससे महान् अप्रभावना होने के कारण जैनधर्म की महति क्षति होगी। यदि समझाने पर भी साधु नहीं मानता है तो उससे उदासीन रहना चाहिये। केवल आहार मात्र देकर अन्यान्य क्षेत्र से उसका बहिष्कार करना चाहिये। गुरु का भी कर्त्तव्य है कि वह शिष्यों के दोष देखने के लिये सहस्रचक्षु बनें। शिष्यों के दोष देखने के लिये स्वयं दूरबीन अणुवीक्षण यन्त्र बन जाये। जिनपे शासन किया जाये वे शासित अर्थात् शिष्य हैं। यदि शासन नहीं किया जायेगा तो वह शिष्य ही नहीं रहेगा, क्योंकि विशेष से रहित सामान्य की उपलब्धि नहीं होती है। जो शिष्यों को कुमार्ग से छुड़ा कर सुमार्ग में प्रवृत्ति कराने के लिये कठोर वचन नहीं बोलता है वह गुरु ही नहीं है। मैं यदि शिष्यों के दोष उनके समक्ष प्रकट करूँगा एवं अनुशासन के लिये कठोर शब्द, प्रायश्चित्तादि का प्रयोग करूँगा तो शिष्यवर्ग मुझे मान्य नहीं करेगा अथवा संघ त्याग करके अन्यत्र पलायन करेंगे। इस प्रकार सोच कर जो शिष्यों के दोष प्रकट नहीं करता एवं दोषों के अनुरूप प्रायश्चित्त नहीं देता वह गुरु ही नहीं, लघु (नीच) है।

दोषान् कांश्चान् तान् प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं,
सार्द्धं तैः सहसा म्रियेद्यदि गुरुः पश्चात्करोत्येष किम्।

तस्मान्मे न गुरुर्गुरुतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं,
ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणं सोऽयं खलः सद्गुरुः।।

(आत्मानुशासन)

यदि वह गुरु शिष्य के कोई भी दोषों को प्रवृत्ति कराने की इच्छा से प्रमाद व अज्ञानता से अथवा अन्य कोई स्वार्थ से आच्छादित करता है और यदि वह शिष्य उक्त दोषों के साथ मरण को प्राप्त होकर दुर्गति को प्राप्त होगा तो क्या गुरु उसका कुछ भला कर सकते हैं? ऐसी परिस्थिति में सुखेच्छु शिष्य विचार करता है कि मुझे दुर्गति में ले जाने वाला, दोषों को नहीं कहने वाला वह गुरु वास्तव में मेरा हितैषी गुरु नहीं है, किन्तु जो दुष्ट मेरे क्षुद्र भी दोषों को सतत सूक्ष्मता से देख करके और उन्हें अतिशय महान् बना करके स्पष्टता से कहता है ऐसा यह खल व्यक्ति मेरा वास्तविक गुरु है। क्योंकि उससे मैं अपनी भूल सुधार करके दुर्गति से बच सकूँगा। स्वयं का दोष स्वयं को दिखाई देना अत्यन्त कठिन है। जैसे स्वयं के चक्षुओं का काजल स्वयं को नहीं देख सकता। उसके लिये दर्पण की सहायता लेनी पड़ती है। उसी प्रकार स्वयं के दोषों को देखने के लिये गुरु आदि अन्य व्यक्तियों की सहायता लेनी पड़ती है। गुरु के कठोर भी वचन भव्य जीव के मनरूपी कमल को विकसित कर देता है। जिस प्रकार सूर्य की सन्तापजनक किरणें कमल की कली को प्रफुल्लित किया करती हैं।

Bad behaviours can often be steered into another channel and then it becomes good behaviour. Even nowdays it is good to be angry and even cruel at times. A woman who saw children being badly treated and was not angry would be a poor type of woman. A doctor who could not be cruel if it was necessary to save a man's life would be a poor doctor. If a boy is making a nuisance of himself charging about the house, we might punish him for being nuisance, but it would be better if we could get him into a good work.

खराब व्यवहार भी अच्छे व्यवहार में बदल सकता है और वह अच्छा व्यवहार हो जाता है। वर्तमानकाल में समयानुसार क्रोध करना तथा क्रूर होना भी अच्छा है। यथा खराब व्यवहार वाले शिशुओं को देख कर यदि कोई महिला क्रोध नहीं करती है तो वह दरिद्रा, निन्दनीय स्त्री है। यदि एक मनुष्य के जीवन की रक्षा

के लिये कोई डॉक्टर निष्ठुर नहीं होता तो वह एक अयोग्य डॉक्टर है। यदि कोई बालक घर में विपत्तिजनक कार्य करता है तो हमको उसे दण्ड देना चाहिये, परन्तु उसे अन्य अच्छे कार्य में विनियोग कर देना उत्तमोतर होगा।

आधुनिक युग में प्रत्येक क्षेत्र में विडम्बना ही विडम्बना है। जिस प्रकार न्यायालय में न्याय के नाम पर अन्याय, सत्य के नाम पर असत्य, शासन में शासन के नाम पर अराजक, संरक्षण के नाम पर शोषण, व्यवसाय क्षेत्र में असली के नाम पर नकली, धार्मिक क्षेत्र में धर्म के नाम पर अधर्म, आध्यात्मिकता के नाम पर शिथिलाचार है तथा नारी जागरण के नाम पर स्वच्छन्दता है। आज गौरवशालिनी भारतीय नारी शील, संयम, लज्जारूपी भूषण, मातृहृदय की कोमलता, भद्रता आदि कृत्रिम रूप धारण करके नारी संस्कृति का अट्टाहास कर रही है। स्वाधीनता के नाम पर स्वच्छन्द होकर कृत्रिम भाइयों के साथ बाजार, होटल, सिनेमा आदि में घूमना, पिकनिक करना इत्यादि के द्वारा नारी के पवित्र जीवन पर कुठाराघात करती हैं। Nowdays the ugly dresses became fashion. अर्थात् वर्तमान युग में अशोभनीय पहनावा ही सांस्कृतिक वेशभूषा बन गई है। गला कटा ब्लाउज, गोपनीय अंग को प्रकाशित करने वाला पहनावा जो स्त्री परिधान नहीं करती है वह स्त्री Backward party, non-civilized अर्थात् अशिक्षित असभ्या रह गई। भोजन पकाना, स्वामी सेवा, सन्तान पालन आदि गृहकार्य करना आधुनिक नारी सभ्यता का कर्त्तव्य ही नहीं रहा। आधुनिक सभ्यता मातृजाति की अर्चना सुसंस्कृत वैज्ञानिक ढंग से कर रही है। बीड़ी, सिगरेट, मद्य आदि के प्रचार के लिये अर्द्धनग्न, नवयुवती, मातृजाति के हाथ में बीड़ी आदि धारण करते हुए अश्लील चित्र यत्र तत्र अंकित करते हैं। सिनेमा थिएटर में तो माता ने सन्तान को जिस अंग प्रत्यंग में धारण, प्रसव अमृतमय दुग्ध देकर पालन किया था, उस–उस अंग को देखना एवं दिखाना ही माता के प्रति सन्तानों का चरम कृतज्ञता ज्ञापन करने का उपाय हो गया है। धन्य है आधुनिक सभ्यता! धन्य है मातृप्रेमी सन्तान! धन्य है आदर्शमय जननी! तुम्हारे आदर्शरूपी प्रकाश के नीचे महान् अन्धकार क्यों? अन्धकार सृष्टि करने वाला कौन? इसका उत्तरदायी कौन? इस अन्धकार को नष्ट करने वाला कौन? क्या आधुनिक मम्मियों की आधुनिक वेश विन्यास, श्रृंगार–विलास, आचार–विचार, स्वच्छन्दता को प्रचार, प्रसार एवं साकार रूप देने के लिये आधुनिक सन्तानों (बेबियों) का प्रगतिशील, वैज्ञानिक उपक्रम नहीं है? क्या पाश्चात्य कुसभ्यता के भूत द्वारा ग्रसित Forward ladies अन्धकार

सृष्टि करने में कारण नहीं हैं? वन को नष्ट करने में जिस प्रकार कुठार में संयुक्त काष्ठ उत्तरदायी है, उसी प्रकार कुसभ्यता से संयुक्त नारी क्या नारी समाज को नष्ट करने में उत्तरदायिनी नहीं है? क्या पुनः भारतीय सुसंस्कारों से संस्कृत नारी वर्तमान में व्याप्त हुई माता जाति के कलंक को नष्ट करने में कारण नहीं होगी? अपनी महत्ता अपने हाथ में है, दूसरों के हाथ में नहीं। संसार झुकता है, किन्तु झुकाने वाला होना चाहिये।

शरीर का श्रृंगार करना, हास्य गर्भित बातचीत करना, कुचेष्टा करना, बिना कारण स्त्री–पुरुष का रागभाव से बातचीत करना, कुशील के साथ सम्पर्क स्थापन करना, लेन–देन करना, घूमना, चेतन अथवा अचेतन चित्र, मूर्ति, सिनेमा के चित्र, टेलिविजन के चित्र, अश्लील गाने सुनना, नृत्य देखना आदि समस्त स्त्री पुरुषों के शील में कलंक लगाने वाले कुमार्ग हैं। जिन महापुरुषों महिलाओं के चित्रादि देखने से, चरित्र पढ़ने से जीवन में धार्मिक, नैतिक,चारित्रिक जागरण आता है, उन्होंने तो वृद्ध होने के कारण इस्तीफा दे दिया एवं उनके स्थान में आधुनिक युवकों के चित्र, नॉवेल आदि नियुक्त हुए। जिससे अधर्म, दुराचार, पाशविकता अति शीघ्रातिशीघ्र प्रोग्रेस कर सकें।

अन्यान्य क्षेत्र में महत् त्रुटियाँ होने पर भी दृष्टिगोचर नहीं होती हैं, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में क्षुद्र से क्षुद्र त्रुटि होने पर भी स्पष्ट दिख जाती है। ठीक ही है अन्धकार में स्थित बुहत् से बृहत् वस्तु दिखाई नहीं देने पर भी क्या प्रकाशित क्षेत्र में स्थित क्षुद्र से क्षुद्र वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती है। अथवा अमावस्या के घोर अन्धकार में पर्वत दृष्टिगोचर नहीं होने पर भी क्या जुगनू दृष्टिगोचर नहीं होता है? अतः धर्म के कर्णधार अथवा धर्म नौका पर आसीन समस्त व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने चारित्र में कलंक लगा कर धर्म को कलंकित न करें।

हे साधो! जो कलंक गृहस्थ अवस्था में दिखाई नहीं दे रहा है वह साधु अवस्था में स्पष्ट दिखाई देता ही है। ठीक ही है – राहु का कलंक नहीं दिखाई देने पर भी क्या चन्द्रमा का कलंक दिखाई नहीं देता है? गृहस्थ अवस्था में प्रचुर परिग्रहादि रहने पर तुम धनी कहलाते थे, परन्तु वर्तमान में किंचित् भी परिग्रह तुम्हारे पास रहेगा तो तुम गरीब कहलाओगे। ठीक ही है – सधवा सती स्त्री योग्य सन्तान को गर्भ में धारण करके शोभा को प्राप्त होती है तो क्या सती स्त्री विधवा होने के अनन्तर गर्भधारण करने से शोभा को प्राप्त करेगी?

सुनाम धन्य हुण्डावसर्पिणी काल का माहात्म्य अत्यन्त विलक्षण है। इस काल में मिथ्यात्व गुणस्थान में ही स्वयं को सिद्ध मानने वाला जीव दूसरों के

गुणों में भी दोष एवं स्वयं के दुर्गुणों में भी गुणों की कल्पना करने में ही अपने ज्ञाता–दृष्टापन को चरितार्थ मानता है। श्रावक सोचता है कि मैं तो छठे काल का गृहस्थ रहूँ, परन्तु मुनि को चतुर्थकालीन उत्कृष्ट मुनि के समान होना चाहिये। मुनि विचार करता है कि मैं तो छठे काल के समान आचरण करूँ, परन्तु श्रावक को चतुर्थकालीन उत्कृष्ट श्रावक होना चाहिये।

सबका आचरण **जानामि धर्म न मे भजामि, जानामि अधर्म न मे त्यजामि** के अनुरूप हो रहा है। अर्थात् धर्म को जानूँगा, परन्तु ग्रहण नहीं करूँगा, अधर्म को जानूँगा, परन्तु त्याग नहीं करूँगा। जिस प्रकार एक कागज के एक पार्श्व के अभाव से दूसरे पार्श्व का भी अभाव हो जाता है, उसी प्रकार साधु के अभाव से श्रावक एवं श्रावक के अभाव से साधु का अभाव अनिवार्य है। अतः धर्म के क्षेत्र में दोनों का स्थान प्रायः समान है। श्रावक जिस प्रकार आहारादि दान करता है, उसी प्रकार साधु–साध्वियों के लिये शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। अज्ञानता शिथिलाचार में एक कारण है। जिस प्रकार साधु श्रावकों के दोषों को बता कर उन्हें निर्दोष बनाने में सहायक होते हैं, उसी प्रकार श्रावक भी साधु के दोषों को एकान्त में कह कर साधुओं को निर्दोष बनने में सहायक बनें। सहृदय सहायता का प्रभाव विशेष पड़ता है।

We know now that many of the bad men and women have been made bad by being badly treated themselves in infancy and often, if we are kind to them and help them, they become good persons.

There is so much good in the worst of us,
And so much bad in the best of us,
That it ill behoves any one of us,
To find fault with the rest of us.

वर्तमान में हमें ज्ञात हुआ कि अनेक स्त्री–पुरुष खराब व्यवहार करते हैं और उसके फलस्वरूप खराब व्यवहार पाते हैं, परन्तु यदि हम उन्हीं के ऊपर दया करेंगे एवं सहायता करेंगे तो वे आदर्शवान् बन जायेंगे। खराब के मध्य भी अनेक अच्छे रहते हैं। उसी प्रकार अच्छे के मध्य भी खराब रहते हैं। किसी के प्रति खराब व्यवहार करना ठीक नहीं है। दूसरों के अवगुण निकालने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

निर्विण्णैर्भव संक्रमाच्छ्रुतधरैरेकान्ततो निस्पृहै-
र्नार्यो यद्यपि दूषिताः शमधनैर्बह्मव्रतालम्बिभिः।
निन्द्यन्ते न तथापि निर्मल यम-स्वाध्याय-वृत्तांकिता,
निर्वेद-प्रशमादि पुण्यचरितैर्या शुद्धिर्भूता भुवि।।

(ज्ञानार्णव – 59)

जो संसार के भ्रमण से विरक्त हैं, शास्त्रों के पारगामी और स्त्रियों से सर्वथा निस्पृह हैं तथा उपशम भाव के धनी, ब्रह्मचर्यव्रत को अंगीकार करने वाले मुनियों ने यद्यपि स्त्रियों की निन्दा की है, तथापि जो नारी निर्मल एवं पवित्र यम, नियम, स्वाध्याय, चारित्रादि से अलंकृत है और वैराग्य, उपशमादि पवित्राचरणों से पवित्र हैं, वे निन्दा के योग्य नहीं हैं, क्योंकि **परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य** अर्थात् दूसरों की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना तथा दूसरों के गुणों को प्रच्छन्न करना एवं अपने अविद्यमान गुणों को प्रकट करने से नीच गोत्र को बन्ध होता है। **साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप, जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप** को प्रत्येक प्राणी को अनुकरण करना चाहिये। स्त्री केवल पति की भोगांगिनी नहीं है, किन्तु पति की माता, भगिनी आदि भी है।

कार्येषु मन्त्री वचनेषु दासी भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री षडभिर्गुणैः स्त्री कुलतारिणी स्यात्।।

1. स्त्री पति के कार्य में मन्त्रणा देने वाली होने से मन्त्री है। 2. पति के साथ वचन के व्यवहार में मृदुभाषिणी, विनययुक्ता होने से दासी है। 3. पति को भोजन कराते समय माता के समान आदर से भोजन कराती है, इसीलिये माता के समान है। 4. शय्या पर रम्भा अप्सरा के समान भोग प्रदान करने से रम्भा है। 5. पति को धर्मपालन करने में सहायता करती है, धर्म में अनुकूल रहती है, सो धर्मपत्नी व अर्द्धांगिनी है। 6. क्षमागुण में पृथ्वी के समान होकर गार्हस्थिक सुखों–दुःखों को सहन करने वाली होने से धरित्री है। स्त्री जन्मदात्री होने से जाया भी है।

स्त्री को अपनी भोगिनी एवं भोगदायिनी नहीं समझें। पूर्वोपार्जित पाप कर्म के उदय से स्त्रीपर्याय प्राप्त हुई है, मिथ्यात्व कर्म की प्राधान्यता से श्रृंगारप्रियता विशेष इच्छा से महान् निन्दनीय स्त्रीपर्याय प्राप्त हुई है। **यौवने मर्कटी सुन्दरी** के न्याय से यौवन में खाल की सुन्दरता के मद से उन्मत्त होकर अपना स्वरूप जो समस्त वेद, रूपादि से रहित सच्चिदानन्द है, उसे नहीं भूले। प्रत्येक समय

स्त्रीपर्याय में अरुचि रखें एवं श्रृंगारादि क्रिया नहीं करें। पूर्वोपार्जित वेद के एवं चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से जो तीव्र असह्य मैथुन ज्वर होता है उसके उपशम के लिये मैथुनरूपी औषधि का सेवन करें, परन्तु औषधि भी उतनी ही सेवन करें जितनी ठीक से हजम हो सके। आर्षपरम्परा के प्राकृतिक परिवार–नियोजन का अवलम्बन करें। जिससे शासकीय कृत्रिम परिवार–नियोजन के अधीन नहीं होना पड़े। सन्तान उत्पन्न करना माता का मुख्य कर्त्तव्य नहीं है, वरन् सन्तान को योग्य बनाना माता का मुख्य कर्त्तव्य है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में, दिन में एवं आसक्ति सहित मैथुन करना गृहस्थों को त्याग करना चाहिये। अन्यथा बालक एवं बालिका अयोग्य, रुग्ण, विकलांग उत्पन्न होंगे। सुयोग्य सन्तान की माता होना ही मातृत्व की गरिमा है, न कि सहस्रों कुयोग्य सन्तानों की।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं-
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।।

(भक्तामर)

हे गरीयसी माता के वरद पुत्र! सैकड़ों स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करती हैं, किन्तु जिस माँ ने आपको जन्म दिया वह तो उन सैकड़ों में एक ही है। सभी दिशाओं में तारे उदय होते हैं, परन्तु सहस्रों किरणों से दीप्तिमान दिवाकर को तो पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है।

।।जैनं जयतु शासनम्।।

मेरी दृष्टि से सुपुत्र कुलदीपक हैं, तो सुपुत्रियाँ उभय–कुलदीपिकायें हैं। इस योग्यता को प्राप्त करने के लिये उन्हें शिक्षित, सुसंस्कारित, फैशन–व्यसनों से रहित कर्तव्यनिष्ठ, देव–शास्त्र–गुरुभक्त, दान, दया, सेवा से युक्त, उदारवादी, प्रगतिशील बनना चाहिये। आत्मकल्याण के लिये इससे भी आगे साधु–साध्वी बनकर आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान से युक्त होकर ध्यान–अध्ययन से स्व–पर–विश्वकल्याण करना चाहिये। केवल आधुनिक पढ़ाई से, फैशन–व्यसनों से, विवाह करके धन कमाने मात्र से कोई महान् नहीं हो जाता है।

– आचार्य कनकनन्दी

सर्वोदय

आचार्य श्री कनकनन्दी जी की क्षुल्लक अवस्था (1979) का लेख

exyLej.k

क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकालसर्वार्थ युगपदवभासं।
सकलसुखधाम सततं वन्देऽहं केवलज्ञानम्।।

विश्व के समस्त जीव, धर्म, समाज, संस्कृति, भाषा, विचार, विज्ञानादि सर्वोदय को प्राप्त करने के लिये अनादिकाल से पुरुषार्थ कर रहे हैं, परन्तु विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट प्रतीति होती है कि अनेक धर्म, संस्कृति आदि का उत्थान हुआ। पुनः उन्हीं का पतन भी हो गया। जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल में उदय को प्राप्त होता है, पुनः सन्ध्या को अस्त को प्राप्त करता है, उसी प्रकार अनेक धर्म, सभ्यतादि उदय को प्राप्त कररके पुन अस्त को प्राप्त होते हैं। ओरिया कवि ने कहा है **धूलि होइ मिळिद्दिमाटिरे केते केते सम्राटर घर, सहस्रर समागम जहिं तहिं आजि चरे वन चर।** अनेक सम्राटों के राजप्रासाद धूलि होकर माटी में विलीन हो गये। जहाँ पर सहस्र लोगों का समागम था, वहाँ आज वनचर विचरण कर रहे हैं। एक दिन ग्रीक आदि देश संस्कृति, विज्ञानादि में अग्रगण्य था एवं अमेरिका, रूस आदि उदयाचल के नीचे थे, किन्तु वर्तमान इसका विपरीत दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार अनेक जाति धर्मादि एकांगी अभ्युदय को प्राप्त करके फिर अस्त को प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि इनका अभ्युदय प्रतिपक्षसहित एवं सर्वोदय से रहित है। धनंजय कवि ने ठीक कहा –

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।
संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये।।

हे परम अभ्युदय के स्वामी! संसार के सब पदार्थों का अभ्युदय अस्तसहित है। जिस प्रकार राहु सूर्य का, पानी अग्नि का, प्रलयकाल की वायु समुद्र का, विरहभाव संसारभोगों के अभ्युदय को नष्ट करने वाला है, किन्तु आपका अभ्युदय समस्त प्रतिपक्ष से रहित है। अतः आपका अभ्युदय ही वास्तविक अभ्युदय है।

किसी धर्म, जाति, व्यक्ति आदि एक निश्चित धर्म व जाति आदि के आंशिक अभ्युदय को ही सर्वाभ्युदय मान कर अभ्युदय से बहुत दूर रह कर ही कुछ लोग सन्तोष को प्राप्त हुए हैं। जिस प्रकार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि में अभ्युदय –

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागोरे धीरे।
एई भारतेर महामानवेर सागर तीरे।।

(गीतांजली)

हे मेरा चित्त! तुम इस भारत के मानव समाजरूपी सागर के पुण्यतीर्थ में जागो। यहाँ कवि ने केवल भारत के मानव समाज को ही अभ्युदय को प्राप्त करने के लिये आह्वान किया, किन्तु सर्वोदय तीर्थ के अनुयायी के आह्वान समस्त विश्व के समस्त प्राणीमात्र के लिये आह्वान है। ना वहाँ कोई देश, ना संकीर्ण मनोभाव, ना कोई अन्धानुकरण।

तदनु जयति श्रेयान्धर्म प्रवृद्ध महोदयः,
कुगति विपथ क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनय स्यांगी भावाद्विवित्त विकल्पितं,
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।

(चैत्यभक्ति)

जो विश्व के समस्त प्राणियों को कुगति, विपथ और समस्त प्रकार दुःखों से निवृत्ति करके सुगति, सुपथ, स्वर्ग, तीर्थंकरादि अभ्युदय एवं मोक्षरूपी सर्वोदय को प्राप्त करता है। ऐसा प्रशंसनीय सर्वोदय को प्राप्त जिनधर्म (जीवों का धर्म) सर्वोदय को सर्वदा प्राप्त हो। पर्यायार्थिक नय से उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप सर्वाभ्युदय नेता (जिनेन्द्र) के सर्वाभ्युदय आह्वान समस्त विश्व के प्राणियों को अनुदय (संसार) के उदय को (मोक्ष) प्राप्त कराने वाला हो। अहो! सर्वोदय में क्या विशालता, उदारता, क्या सत्यं–शिवं–सुन्दरं, क्या शाश्वतिकता, सर्वांग–उदयता? इसीलिये इसका सार्थक नाम सर्वोदय है। जिस प्रकार सूर्योदय का प्रारम्भ प्रातःकालीन लालिमा से प्रारम्भ होता है? उसी प्रकार अनादि से अस्तगत आत्मा के सर्वोदय का प्रारम्भ सम्यक्त्व के शुभानुराग से होता है, परन्तु सम्यक्त्वरहित विषयानुराग आत्मा को अस्तगमन में कारण होता है।

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः।
सन्ध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।।

अनादिकालीन अज्ञानरूप अन्धःकार को नष्ट कर देने वाले जीवों के जो व्रत, तप, शास्त्राभ्यास में शुभानुराग होता है, वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय के लिये होता है, ग्रीष्मकालीन सूर्य के समान उसका अभ्युदय अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता जाता है। इस सर्वोदयानुयायियों का

अभ्युदय अतिशयसहित वृद्धिंगत होता जाता है। अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः।

यथा – तत्राभ्युदयसुखं नाम सातादिप्रशस्तकर्म-तीव्रानुभागोदयजनितेन्द्र प्रतीन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशदादिदेव चक्रवर्ति बलदेव नारायणार्द्धमण्डलीक-मण्डलीक राजाधिराज महाराजाधिराज परमेश्वरादि दिव्यमानुषसुखम्। सातावेदनीय की प्रशस्त कर्मप्रकृतियों के तीव्र अनुभाग के उदय से उत्पन्न हुआ जो इन्द्रादि स्वर्ग सुख और चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि मनुष्य सुखों को अभ्युदय सुख कहते हैं। सर्वोदयाभिलाषी तीर्थंकर परम देव अभ्युदय के सुख को त्याग करके सर्वोदयता को प्राप्त करते हैं, जहाँ पर शाश्वतिक, सुख, सर्वोदय, ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनन्त किरणों से स्व और समस्त विश्व को सर्वदा के लिये समस्त रूप से प्रकाशित करत रहते हैं। सर्वोदय के द्वारा प्रकाशित समस्त विषय भी सर्वोदय को प्राप्त होता है। समस्त विषय प्रति प्रकाश डालना इतने छोटे से निबन्ध में असम्भव है। कियत् विषय में कियत् अंशों का ही सम्भव है। 1. सिद्धान्त में तत्त्व, 2. धर्म में अहिंसा, 3. विचारों में अनेकान्त, 4. कथन में स्याद्वाद, 5. व्यक्ति में चरित्रवान् और 6. समाज में अपरिग्रहत्व विषयक सर्वोदयता है।

1- fl)kUr e rÙok dh lokn;rk &

लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो सव्वागासवयवो णिच्चो।।

यह विश्व कोई महान् शक्तिवान् विश्वसृष्टा द्वारा सृजित नहीं किया गया है। विश्व अनादि से स्वतःसिद्ध होने के कारण शाश्वतिक है।

The universe is from the beginningless time and for the endless time, that means it is eternal.

विश्व किसी प्रकार ऊँकार शब्द अथवा उत्तप्तग्यासिय पिण्ड से अथवा परमाणु से आरम्भ नहीं हुआ, किन्तु स्वभावनिवृत्त है। लोक मायामय अथवा सर्वशून्य नहीं, किन्तु जीवादि द्रव्यों से भरा हुआ है। अनन्त आकाश के अवयवस्वरूप बहुभाग में अवस्थित है। कोई भी शक्ति, काल इसको नष्ट नहीं कर सकता है अथवा क्षणभंगुर भी नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र स्वतःसिद्ध, स्वावलम्बी, अनन्तशक्तिशाली एवं शाश्वत है। सर्वोदय समस्त द्रव्य की सर्वोदयता की घोषणा करता है। असत् का उत्पाद नहीं होता और सत् का नाश नहीं होता। "Nothing can ever become something, nor can something become nothing." लोक छह द्रव्यों से बना है – 1. जीव, 2.

पुद्गल, 3. धर्म, 4. अधर्म, 5. आकाश और 6. काल। जीव व पुद्गल को छोड़ कर अन्य चार द्रव्य शाश्वतिक शुद्ध ही है। जीव अपने नित्योदय स्वभाव से प्रकाशित होने पर भी मध्य में कर्मरूपी निषेधाचल के व्यवधान से अस्तमित हुआ है। जब वह अपने पुरुषार्थ से उदय को प्राप्त करेगा, तब उस उदय को रोकने में राहु, केतु आदि कोई समर्थ नहीं हो सकेंगे। उस सर्वोदय के बाद पुनः अस्त ही नहीं होगा।

2- /ke e vfgalk dh lokn;rk &

वत्थु सहावो धम्मो। The Religion is the characteristics of the substance. सामान्य से प्रत्येक वस्तु का धर्म अपने–अपने स्वभाव की घोषणा करते हुए विशेष रूप से जीवों का धर्म **अहिंसा परमो धर्मः** घोषित किया। जिस प्रकार आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं, उसी प्रकार अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं। जिस प्रकार **सत्** कहने से समस्त द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है, उसी प्रकार अहिंसा कहने से सब धर्मों का ग्रहण हो जाता है। अहिंसा का अर्थ – अप्रादुर्भावतः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति। आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि परिणामों को घातने वाला राग–द्वेषादि का अप्रादुर्भाव होना ही अहिंसा है। अहिंसा सामान्य के दो भेद 1. भाव अहिंसा, 2. द्रव्य अहिंसा। **भाव अहिंसा ही वास्तविक अहिंसा है।** इसी प्रकार प्रकाशित करते हुए भी **पुग्गल संघट्टणदाये, पुग्गल अच्चासणदाये तस्स मिच्छामि दुक्कडं** को भी प्रकाशित करता है। धन्य हे सर्वोदयता! तुम्हारे प्रकाश में गुफा, पाताल, महातमप्रभा, परमाणु प्रकाशित है। अहिंसा विश्व प्रेम एवं Live and let live को प्रकाशित करता है।

3- fopkj e vudkUr dh lokn;rk &

मन अत्यन्त चंचल है। वह प्रत्येक समय गति करना चाहता है। उसको यदि एकान्त रूपी सरल रेखा खेत में छोड़ दी जायेगी, तब वह अत्यन्त शीघ्रता से उस खेत को अतिक्रम करके अन्य खेत में चली जायेगी, किन्तु अनेकान्तरूपी वृत्ताकार उपवन में जहाँ सुमधुर फलादि हैं, वहाँ छोड़ने पर वहीं रमण करेगी। अन्य खेत में नहीं जायेगी।

अनेकान्तात्मार्थप्रसवफलभारातिविनते,
वचः पर्णाकीर्णे विपुलनयशाखाशतयुते।
समुत्तुंगे सम्यक्प्रततमतिमूले प्रतिदिनं,
श्रुतस्कन्धे धीमान् रमयतु मनोमर्कटममुम्।।

अनेक धर्मात्मक पदार्थ रूप फूल एवं फलों के भार से झुका हुआ, वचनों रूप पत्रों से भरा हुआ, अनेक नयों रूपी शतशाखाओं से युक्त, उन्नत, सम्यग्मतिज्ञान रूप मूल से स्थिर हुआ श्रुतस्कन्ध रूप वृक्ष में मनोरूपी बन्दर को रमण करना चाहिये। जब तक विचारों में अनेकान्त नहीं आयेगा, तब तक विचारों का सर्वोदय नहीं हो सकता है। एक ही द्रव्य नित्य भी है, अनित्य भी है। ध्रुव भी है, एक भी है, अनेक भी है। इस प्रकार का ज्ञान होना ज्ञान की सर्वोदयता है। इससे असहिष्णुता, कूपमण्डूकता का अस्त होता है।

4- dFku e L;k}kn dh lokn;rk &

अनेकान्तात्मक वस्तु होने के कारण सम्पूर्ण वस्तु का कथन एक बार में नहीं कर सकते हैं। एक बार में एक धर्म का ही प्रतिपादन कर सकते हैं। यदि एक धर्म का कथन करते हुए प्रतिपादन करेंगे कि वह वस्तु इस विवक्षित धर्मात्मक ही है, तब अन्य धर्म नष्ट होने के कारण वस्तु ही नष्ट हो जायेगी। तब जिस धर्म का कथन कर रहे हैं, उस धर्म का भी नाश हो जायेगा, क्योंकि धार्मिकों के बिना धर्म नहीं रह सकता है। इसीलिये सर्वोदय द्रव्य को कथन करने के लिये स्यात् शब्दांकित सर्वोदय वचन बोलना चाहिये।

5- 0;fä e pfj=oku dh lokn;rk &

चारित्र व्यक्तिगत सर्वोदयता है। चारित्र व्यक्तिगत धर्म है। चारित्र नष्ट व्यक्ति का सब कुछ नष्ट है। If character is lost everything is lost. **चारित्तं खलु धम्मो** निम्नोक्त चौदह गुणों से युक्त व्यक्ति चारित्रवान् है।

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
न्नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहार-आर्यसमिति प्राज्ञः कृतज्ञो वशी,
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरन्।।

1. न्याय से धन कमाना, 2. गुणों की, गुरुओं की, गुणाढ्यों की सेवा, 3. प्रशस्त वचन बोलने वाला, 4. परस्पर विरोध रहित त्रिवर्गों का सेवन करने वाला, 5. त्रिवर्ग योग्य स्त्री एवं गृह वाला, 6. युक्ताहार–विहार करने वाला, 7. सत्संगति वाला, 8. हिताहित विचार करने वाला, 9. उपकार को मानने वाला, 10. पाप करने में लज्जाशील, 11. इन्द्रियों को वश में करने वाला, 12. धर्मश्रवण करने वाला, 13. दयालु, 14. पापों से डरने वाला व्यक्तिगत सर्वोदय है।

6- lekt e vifjxgRo fo'k;d lokn;rk &

परस्पर वात्सल्य, प्रेम, सहिष्णुता सहित मानवों को समाज कहते हैं।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् परस्पर उपकार करना जीवों का धर्म है। परस्पर उपकार सहित समाज ही सर्वोदयता को प्राप्त कर सकता है। यदि दूसरों का उपकार नहीं कर सकते हैं तो अपकार नहीं करें। अन्य की उन्नति नहीं कर सके तो असहिष्णु नहीं बनें। कृतज्ञता के विनिमय में कृतघ्न नहीं बनें। इस प्रकार का मनोभाव जिस समाज में है वह समाज सर्वोदयी है। स्वार्थान्ध होकर अन्य का शोषण करके जो बड़ा बनता है उसका वह बड़प्पन उसी प्रकार है जिस प्रकार फैलरिया (हाथीपाँव) रोग होने पर पाँवों का मोटापन। यदि कोई देश, समाज अभ्युदय वाला है तो वह अन्य देश, जाति के ऊपर अन्याय से आक्रमण करके उस देश का सर्वस्व नष्ट नहीं करें। प्रत्येक व्यक्ति, व्यक्ति का धर्म, आचार, विचार, संस्कृति के ऊपर किसी प्रकार व्याघात नहीं डाला जायें। तब ही राष्ट्र सार्वभौम गणतन्त्र राष्ट्र हो सकता है। व्यक्ति को भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व रखना चाहिये। **स्तेनप्रयोगतदाहृतादान विरुद्ध राज्यातिक्रम हीनाधिक मानोन्मान प्रतिरूपक व्यवहाराः।** चोरी करने के लिये भेजना, उससे आये हुए द्रव्य ग्रहण करना एवं अच्छी वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिला कर विक्रय करना, हीनाधिक मापतोल करना, राज्यनियम के विरुद्ध कार्य करना यह व्यक्ति का समाज के प्रति अनुदारता है। जिस समाज में विषमता है वह समाज कभी भी सर्वोदयता को प्राप्त नहीं कर सकता है।

अतः जिससे समष्टि, व्यष्टि, मन, वचन, इहलोक, परलोक, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, विश्वतत्त्व समस्त रूप से शाश्वत प्रकाशित होते ही रहेंगे, उसे सर्वोदय कहते हैं। जो सर्वोदयी द्वारा प्रकाशित है वह सर्वोदय है। सर्वोदय प्रत्येक वस्तुगत स्वभाव है। सर्वोदयी स्वभाव से च्युत होना अस्त है। अनन्त किरणों से प्रकाशित होने वाला सर्वोदय का प्रकाश हम लोगों के सर्वोदय के लिये होवें।

ukjh dh lokn;rk &

जैनधर्म में नारी की सर्वोदयता सर्वोपरि है। बौद्ध धर्म में बुद्ध ने अत्यन्त सोच–विचार करके, सन्दिग्ध मनोभाव से उन्हीं के धर्मशासन के अन्तिम भाग में गौण रूप से नारियों को स्थान दिया था, परन्तु जैनधर्म के आदि प्रवर्तक वृषभनाथ ने गृहस्थ अवस्था में नारियों को शिक्षा एवं दीक्षा देकर नारियों की अभ्युदयता की घोषणा की। जब मातृजाति को बाजार से गाय–भैंसों की तरह विक्रय किया जाता था एवं घर में पालित पशुओं के समान व्यवहार किया जाता था, उस समय सर्वोदय के नेता महावीर ने नारी जाति का पुनरुद्धार किया था। नारियों की दासता नष्ट करके पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की थी। नारियों को केवल

सामाजिक स्वाधीनता प्रदान करके सक्रिय नेता महावीर उदासीन नहीं रहे। उन्होंने नारियों को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया। महाप्रज्ञ धर्मवीर वर्द्धमान जानते थे कि जब तक नारी समाज में रहेगी तब तक वह नर की अधीनता से पूर्ण स्वाधीनता नहीं पा सकती है। जब तक पराधीन है, तब तक सुख नहीं। अतः स्वाधीनताप्रेमी सन्मति नारियों को सर्वोदय के मार्ग पर आरूढ़ कर नारियों को पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की। चन्दनबालादि अनेक नारियाँ इसका ज्वलन्त उदाहरण है। स्वाधीनचेता वर्द्धमान ने नारियों को स्वाधीनता प्रदान की, किन्तु स्वच्छन्दता प्रदान नहीं की थी। वे जानते थे कि स्वाधीनता में सुख है, स्वराज्य है, धर्म है, मान है, मर्यादा है, शान्ति है, निर्माण है, परन्तु स्वच्छन्दता में दुःख है, पराधीनता है, अधर्म है, अपमान है, अमर्यादा है, अशान्ति है एवं बन्धन है। आर्यिकाओं को उन्होंने केवल धार्मिक अधिकार नहीं दिये थे, बल्कि उसके साथ–साथ मुख्य आर्यिकाओं को शिक्षा, दीक्षा, अनुशासन करने आदि के अधिकार भी दिये थे। इसी कारण जैनधर्म में श्रावक एवं मुनियों की अपेक्षा श्राविकाओं और आर्यिकाओं की संख्या अधिक दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार आर्यिकायें बाह्य में शुक्ल वस्त्र धारण करती हैं, उसके अनुरूप अन्तरंग में स्वच्छ भाव धारण करती हुई शोभा को प्राप्त होती है।

ननु सन्ति जीवलोके कश्चिच्छमशीलसंयमोपेताः।
निजवंशतिलकभूताः श्रुतसत्यसमन्विता नार्यः।।

(ज्ञानार्णव – 57)

निश्चय से इस लोक में अनेक स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जो मन्दकषाय रूप शमभाव, शीलसंयम, विभिन्न चारित्ररूपी उत्तमोत्तम अलंकार से अलंकृत होकर अपने वंश को शोभायमान करती हैं। श्रुतसागर में अवगाहन करके सत्य वचनरूपी मंगल गान करके अपने जीवन को पवित्र करती हैं। संयम धारण के बाद मोह महाभट को नाश करने के लिये सर्वदा तत्पर रहती हैं। प्रत्येक समय स्त्री पर्याय में ग्लानि रखती हुई स्त्रीलिंग छेद करके परम्परा से मोक्ष जाने का उपाय करती रहती है। स्वामी, पुत्र, कुटुम्बादि त्याग करके निस्पृह होकर आर्यिकाओं के संघ में, वन में ध्यान–अध्ययन में लवलीन होकर दुनियाँ को प्रत्यक्ष प्रमाण देती है कि नारी अबला नहीं है, परन्तु स्वयं के आत्मा को पालन करने वाली सुयोग्य माता है। खाद्य प्रस्तुत करने वाली पाचिका नहीं है, किन्तु कर्मों को पकाने वाली पाचिका है। सन्तानों को भोजन कराने वाली माता नहीं है, वरन् जिनवाणी रूपी अमृत को प्रदान करने वाली महान् आर्यिका एवं गणिनी

है। संसार की नेत्री नहीं है, अपितु धर्म की भी नेत्री है। सतीत्व के कारण जिस प्रकार स्त्री पूज्या होती है, उसी प्रकार महत् चारित्र के कारण जगत् पूज्या होती है।

सतीत्वेन महत्वेन वृत्तेन विनयेन च।
विवेकेन स्त्रियः कश्चित् भूषयन्ति धरातलम्।।

(ज्ञानार्णव – 58)

अनेक ऐसी महान् स्त्रियाँ हैं जो अपने पतिव्रतत्व से गरीयसी, देश एवं सकल चारित्र से तेजस्विनी, समस्त प्रकार के विनय से अलंकृत होकर एवं विवेक मुकुट से सुसज्जित होकर इस धरातल को शोभायुक्त करती हैं। इसी प्रकार नारी पृथ्वी से भी गरीयसी, स्वर्ग से भी महान्, आकाश से भी बृहद्, सागर से भी गम्भीर, सूर्य से भी तेजस्विनी है। उपरोक्त गुणों से सुशोभित नारी पूज्या है। इससे विपरीत अथवा इससे सहित होकर भी जो स्त्री स्वच्छन्दी है, वह भी महान् निन्दनीया है।

गौरवेषु प्रतिष्ठासु गुणेष्वाराध्यकोटिप्पु।
धृता अपि निमज्जन्ति दोषपंके स्वयं स्त्रियः।।

(ज्ञानार्णव – 35)

कार्यक्षेत्र में गौरवान्वित ज्ञानादि से प्रतिष्ठित और चारित्रादि आराधना करने योग्य गुणों से भूषित होती हुई भी स्त्रियाँ अपने दुश्चारित्ररूपी पंक में निमग्न हो जाती है। अर्थात् स्त्रियाँ किसी के भी वश में नहीं रहती हैं, किन्तु स्वच्छन्दता से वर्तने लग जाती हैं। इस प्रकार गुणों से सहित स्त्री भी महान् भयंकर है। ठीक ही है – क्या मणि से सहित भी सर्प भयंकर नहीं होता है? अतः महान् आर्यिका, शास्त्रज्ञ गणिनी भी क्यों न हो, वह स्वच्छन्दी होकर यथेच्छा प्रवृत्ति नहीं करती है। प्रत्येक समय में आगम के लगाम से सुसज्जित रहती है। जिस प्रकार कार (गाड़ी) ब्रेक के बिना बेकार (बिना काम की) है उसी प्रकार स्वच्छन्दता सहित अन्यान्य गुण भी कुगुण हैं।

मातृहृदय की दृष्टि से नारी का स्थान अतुलनीय है। जिस प्रकार बिना छाया से पान की लता वृद्धि नहीं कर सकती, उसी प्रकार बिना माता की छाया से सन्तानों की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, धार्मिकतादि रूपी लता वृद्धिंगत नहीं हो सकती। जिस प्रकार कर्म के बिना संसार नहीं है, उसी प्रकार नारी के बिना गृह भी असम्भव है। गृहस्थ धर्म भी नारी के बिना असम्भव है। इसीलिये नारी को सहधर्मिणी व अर्द्धांगिनी कहते हैं। नारी संसार की प्रकृति है। सृष्टि

में प्रकृति अग्रगण्य होने से नारी का स्थान पुरुष से पहले है। जैसे सीताराम, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण आदि। गृहस्थ धर्म में जिस प्रकार नारी पुरुष की सह धर्मिणीरूपी अर्द्धांगिनी है, उस प्रकार यति धर्म में नहीं है। सस्त्रीक यतिव्रत नहीं होता अथवा सस्त्रीक को मोक्ष भी नहीं होता। वाम जंघा में स्त्री को बैठा कर आत्मध्यान करना एवं स्त्री का भोग करना एवं मोक्षलक्ष्मी का भी भोग करना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार कि जीव द्रव्य का अजीव होना एवं अजीव द्रव्य का जीव होना। गृहस्थाश्रम में जिस प्रकार नारी पुरुष के अधीन रह कर भोग की दासी बनती है, उसी प्रकार यत्याश्रम एवं मोक्षाश्रम में भी पुरुष की दासी रह कर भोग की सामग्री बनती है, यह कल्पनातीत कथन है। इन्द्रियजन्य भोग वनक्रीड़ा, अनंगक्रीड़ा हास्यादिक पाशविक लेते हुए आत्मिक आनन्द मानना अपने को तथा धर्म को ठगना है। धर्म के नाम पर पाशविक इच्छाओं की वृद्धि करना है।

दोनों तट से सहित होने पर ही नदी वास्तविक नदी है। यदि नदी दोनों तटों को उल्लंघन करती है तो वह नदी नदी न रह कर वन्या (बाड़) हो जायेगी। तटों से सहित जितनी सुन्दर एवं उपकारी है, तट को उल्लंघन करने वाली नदी उतनी ही भयावह व क्षतिकारक है। उसी प्रकार जितनी शीलसंयम एवं अनुशासन सहित नारी की गरिमा, लालित्य एवं पूजा है, उतनी कुत्सिता एवं अवहेलिता नारी की नहीं है। वर्तमान में नारियों के अभ्युदय की जो प्रतियोगिता है, वह अभ्युदय की नहीं वरन् पतन की प्रतियोगिता है। प्रातःकालीन लालिमा के समान सन्ध्याकालीन लालिमा होने पर भी प्रातःकालीन लालिमा सूर्य के अभ्युदय की सूचना करने वाली है, परन्तु सन्ध्याकालीन पतन की सूचना करने वाली है। वर्तमान नारी जाति की जो शिक्षा, वेशभूषा, रहन–सहन, आचार–विचार, बोलचाल है, वह उन्हीं के पतन का पूर्वाभास है। आज नारी स्वाधीनता के नाम पर उन्मार्ग, सभ्यता के नाम पर गुह्यअंग प्रकाशन, जेंटिल लेडि के नाम पर मातृत्व का त्याग, आधुनिकता के नाम पर नैतिकता का त्याग आदि का अवलम्बन लेकर स्वयं को उच्च मान रही है। ठीक है फलों से रिक्त वृक्ष की शाखा अवनत से उन्नत होकर क्या उच्च नहीं दिखाई देती है? आज संयम, शील, कोमल हृदय की शिक्षा देने वाली नारी की विपरीतता प्रत्यक्ष में देखने से अन्तरंग में स्वयमेव दीर्घ श्वास आकर कुछ चुप–चुप रहने के लिये कोशिश करता है, किन्तु उसका निराकरण कब, कैसे और किसके माध्यम से होगा इसका समाधान प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

नारी अपने अभ्युदय को स्मरण करें। उसके अनुसार चल कर अभ्युदय को प्राप्त कर सकती है। स्त्री जगत् की प्रकृति, पुरुष की जन्मदात्री, घर की लक्ष्मी, शिक्षा की सरस्वती, रण की चण्डी, सेवा में कुमारी, नाइटिंगेल, संसार पालने में अन्नपूर्णा एवं धर्म में चन्दनबाला, चेलना है। विज्ञान में मॅडम क्युरी, गणित में लीलावती, सती में सीता, शासन में लक्ष्मीबाई, दुर्गाबाई है। बाह्य चमड़ी की नश्वर सुन्दरता में, कपड़ों की सभ्यता में, स्नो, सेंट की गन्ध में, सिनेमा–थिएटर के रंग में अपने शील की सुन्दरता, विनय की सभ्यता, चारित्र की सुगन्धता रूप कर्त्तव्य को नहीं भूलें। काँच के खण्ड के विनिमय में चिन्तामणि रत्न को नहीं खो डालें। अपने स्वाभिमान को नहीं भूलें। अग्नि को जल, सर्प को फूलमाला, एक वस्त्र को सहस्रों वस्त्र, दुर्दान्त भी खण्डाधिपति को भी हेला में परास्त करने वाला शक्ति की पुनः साधना करें। इससे ही नारी का अभ्युदय है। यह अभ्युदय उसके लिये परम्परा से सर्वोदय की साधना बन जायेगा। सर्वोदय के बाद उसे निकृष्ट स्त्री पर्याय का कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। इससे विपरीत प्रत्येक कार्य उनके लिये पतन का कारण है।

सर्वोदय

समस्त जीवों का सर्वांगीण विकास होना ही सर्वोदय है। इसके लिये अनेकान्तात्मक ज्ञान, उदार–दृष्टिकोण, समन्वय, स्व–पर–विश्व हितकारी भाव एवं व्यवहार चाहिये। भावात्मक अहिंसा अनेकान्त है, वाचनिक अहिंसा स्याद्वाद है, सामाजिक अहिंसा शोषणरहित अपरिग्रहरूपी साम्यवाद एवं व्यावहारिक अहिंसा सर्व जीवों की सुरक्षा है। संकीर्णता, भेदभाव, ईर्ष्या–द्वेष घृणा से रहित पावन साम्यभाव भावात्मक अहिंसा है; इस भावात्मक अहिंसा से युक्त सापेक्ष कथन वाचनिक अहिंसा है; आर्थिक, भाषा, राष्ट्र, जाति, धर्म, काला–गोरा आदि भेदभाव से रहित सबके प्रति साम्यभाव एवं व्यवहार सामाजिक अहिंसा है; हर जीव की सुरक्षा, समृद्धि, सह–अस्तित्व, विश्वमैत्री, विश्वप्रेम, विश्वशान्ति यह व्यावहारिक अहिंसा है।

इन सबसे युक्त भाव–व्यवहार से ही व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र, विश्व का सर्वोदय सम्भव है।

– आचार्य कनकनन्दी

श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी भगवन्त अनमोल रतन–धन–खान

tldkj %& vt; tSu] ukxiqj

पायो जी मैंने कनक रतन धन पायो
पायो जी मैंने गुरुवर रतन धन पायो
पायो जी मैंने भगवन् रतन धन पायो।।ध्रु.।।

खर्च न फूटे, चोर न लूटे, दिन दिन बढ़त सवायो,
पायो जी मैंने कनक रतन धन पायो,
पायो जी मैंने सुख साक्षात् ही पायो।।(1)

सत् की नाव, खेवटिया सद्गुरु, भवसागर तर आयो,
पायो जी मैंने ऐसो खेवटिया पायो,
पायो जी मैंने श्री गुरुवर धन पायो।।(2)

तप की दृढ़ता, त्याग की मूरत, समता रूप है भायो,
पायो जी मैंने निस्पृह रूप भी पायो,
पायो जी मैंने जगद्गुरु ऐसो पायो।।(3)

स्वाध्याय है जिनके रग–रग, स्याद्वाद ढंग पायो,
पायो जी मैंने सूरीश्वर जी को पायो,
पायो जी मैंने साक्षात् भगवन् पायो।।(4)

सारे जगत् में डंका बाजे, सत्य धर्म खूब फैलायो,
सहज प्रोत्साहित करते भलमन,
मैं तो सत्य–सुखामृत पायो।।(5)

अजय धूल के फूल श्री कनकनन्दी,
मेरी तो हर श्वाँस श्री कनकनन्दी,
हरख हरख जस गायो, गायो जी मैंने हरख हरख जस गायो,
पायो जी मैंने आध्यात्मिक रस पायो।।(6)

महान् आध्यात्मिक/वैज्ञानिक गुरुश्रेष्ठ आचार्य श्री कनकनन्दी जी की प्रगतिशील आरती

l`tu %& efu lfoKlkxj

(राग :– मन डोले मेरा तन डोले....)

धर्म दर्शन के वैज्ञानिक की, ले मंगल दीप प्रजाल हो,
मैं आज उतारूँ आरतियाँ।।ध्रु.।।

कनकनन्दी जी नाम है जिनका, महान् उदारभावी,
जिनके सन्मुख विश्व हुआ है, नतमस्तक शिरनाई,
गुरुजी नतमस्तक शिरनाई,
ऐसे गुरुवर को, ऐसे ऋषिवर को, नितप्रति वन्दन शत बार हो,
मैं आज उतारूँ आरतियाँ।।(1)

देश–विदेश में जिनके प्रतिनिधि, धर्म विज्ञान प्रसारे,
जिनकी प्रज्ञा–समता–ममता, हर जन मंगल गाये,
गुरुजी हर जन हर्षित भावे,
ऐसे मुनिवर की, ऐसे यतिवर की, मैं हरपल करूँ आराधना,
मैं आज उतारूँ आरतियाँ।।(2)

अध्यातम की ज्योति जलाकर, निस्पृह भाव प्रकाशे,
जिनकी सरल मूर्ति लखकर, हर जीव शान्ति पाये,
गुरुजी भव्य जीव शान्ति पाये,
ऐसे मनीषी की, ऐसे हितैषी की, मैं हरक्षण करूँ अर्चना हो,
मैं आज उतारूँ आरतियाँ।।(3)

जिनके ज्ञान–विज्ञान–अनुभव से, लाभान्वित विज्ञानी,
सुविज्ञ भी हरपल लाभान्वित, मन में हर्ष अपारा,
गुरुजी जन में हर्ष अपारा,
ऐसे सद्ज्ञानी, ऐसे विज्ञानी, गुरुवर की आरती आज हो,
मैं आज उतारूँ आरतियाँ।।(4)

पाश्चात्य के विकास व भारत के पिछड़ापन के कारण

& vkpk;Z duduUnh

(राग :– आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

पाश्चात्य के लोग क्यों बहु विकास कर रहे हैं?
विश्वगुरु भारत के लोग क्यों पिछड़े हो रहे हैं?।।ध्रु.।।
इसके कारणों को मैं खोज/(शोध) कर रहा हूँ।
कारणों के अनुसार मैं शिक्षा ले रहा हूँ।।
भारत भी आगे बढ़े ऐसी भावना भाता हूँ।(1)
पाश्चात्य में अनुशासन व कर्त्तव्यनिष्ठा भारी।
राष्ट्रप्रेम व एकताप्रिय स्वावलम्बन निर्भय पूरी।।
शोध–बोध–खोज–निर्माण/(काम) मौलिक व पक्का।(2)
अच्छे काम हेतु प्रोत्साहन करते सहायता करते पूर्ण।
पुरस्कार सह प्रशंसा करते प्रचार–प्रसार पूर्ण।।
आलस्य प्रमाद लज्जा रहित काम करते पूर्ण।(3)
नैतिकता व प्रामाणिक युक्त दया व सेवा सहित।
पशु–पक्षी व प्रकृति की रक्षा करते भाव सहित।।
गरीब संकटग्रस्त देशों के सहायक युक्त भाव।(4)
उपरोक्त गुण भारत में आज होते हैं दुर्लभ तम।
आलस्य–प्रमाद फैशन–व्यसन भ्रष्टाचार में महान्/(संकीर्ण स्वार्थ में लवलीन)।।
अकल बिना नकल करते दीन व अहंभाव।(5)
तोता रटन्त शिक्षा पाते सदाचार रहित है धर्म।
भ्रष्टाचार पूर्ण/(शोषणपरक) राजनीति तथा व्यापार है मिलावट पूर्ण।।
अन्धा कानून भ्रष्ट प्रशासन यत्र–तत्र गन्दगी पूर्ण।(6)
अनीति त्यागो प्रामाणिक बनो बनो है देशप्रेमी।
ईर्ष्या तृष्णा भेदभाव त्यागो बनो है आध्यात्मप्रेमी।।
पुरुषार्थ द्वारा विकास करो 'कनक' है सत्यप्रेमी।(7)

(बावलवाड़ा – 4/12/2012, प्रातः – 6:22)

◆◆◆◆◆

न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू के लिये प्रेषित पत्र

बावलवाड़ा (राजस्थान)
दि. 9/12/2012

श्रीयुत सत्य–तथ्य गवेषक, न्यायाधीश मार्कण्डेय काटजू जी!

सस्नेह अनुमोदना सह शुभाशीष!

भारतीयों के सम्बन्ध में आपके वक्तव्य व मनोगत कुछ पत्र तथा पत्रिकाओं के माध्यम से हमारे श्रीसंघ में पढ़े गये। जैसे आज के दैनिक भास्कर, राजस्थान पत्रिका में छपे बयान ''90 प्रतिशत भारतीय मूर्ख है'' पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता का कारण आपके द्वारा ऐसे कटु सत्य–तथ्य की स्वीकृति व समीक्षा करना है, जिससे सामान्य भारतीयजन अनभिज्ञ हैं। जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र का तीव्रता से सभी मोर्चों पर पतन होता जा रहा है, जो चिन्तनीय व पीड़ाजनक है।

राष्ट्र–विश्व की समस्याओं को लेकर हमारे संघनायक वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने अब तक प्रायः 220 गद्य–पद्यात्मक साहित्य का सृजन किया है, जिसे देश के 57 विश्वविद्यालयों से लेकर विदेशों के विश्वविद्यालयों व विश्वधर्म संसद में भी मान्यता प्राप्त हुई है, जिस पर शोधार्थी शोध कर प्रगतिशील हो रहे हैं। पूज्य आचार्य श्री का साहित्य धर्म–दर्शन–विज्ञान–पर्यावरण–समाज–राजनीति–न्याय आदि विषयों का समन्वयकारी–क्रान्तिकारी संविधान है। आपके पठनार्थ व समीक्षार्थ कुछ साहित्य प्रेषित कर रहे हैं। आशा है कि आप अवश्य ही अपना बहुमूल्य समीक्षात्मक मनोगत प्रेषित करेंगे व थोड़ा समय पूज्य गुरुदेव के समक्ष रचनात्मक चर्चा–वार्ता हेतु अवश्य पधारेंगे, जिससे राष्ट्र–विश्व की कल्याणकारी योजना का मार्ग प्रशस्त होगा। आचार्य श्रीसंघ की भावना है कि आपके माध्यम से महान् उद्देश्यों की उपलब्धि हो, तदर्थ श्रीसंघ का शुभाकांक्षा सह शुभाशीर्वाद!

ऐसे ही आपके विचार खिलाड़ी, अभिनेता, मीडिया व कानून आदि के बारे में जो बहुत वर्षों से प्रकाशित हो रहे हैं, उनसे आचार्य श्री सहमत व प्रभावित हैं। आपके द्वारा लिखित लेख व साहित्य उपरोक्त पते पर अवश्य भेजें।

कल्याणेच्छुक – श्रमण मुनि सुविज्ञसागर
संघस्थ – आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव
बावलवाड़ा, उदयपुर (राज.) प्रवास से

आचार्य श्री कनकनन्दी जी के वैज्ञानिक प्रोफेसर शिष्यों के द्वारा वि. वि. से विश्वस्तर तक जैनधर्म की प्रभावना

गुजरात प्रान्त के साँबरकाठा जिले के अन्तर्गत विजयनगर में चातुर्मास सुसम्पन्न करके स्वाध्यायशील वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ ने निकटस्थ राजस्थान प्रान्त के मेवाड़ अंचल के ग्राम बावलवाड़ा की ओर 28/12/2012 को विहार किया। 3/12/2012 को विभिन्न प्रदेशों से आये हुए गुरुदेव के विद्वान् शिष्य डॉ. नारायणलाल जी कछारा, प्रो. डॉ. पारसमल जी अग्रवाल, प्रो. प्रभात, छोटुलाल चित्तौड़ा आदि ने अपनी–अपनी उपलब्धियों का वर्णन कर संघ को लाभान्वित किया। राजस्थान के जसोल ग्राम में 24/11/2012 का आचार्य श्री महाश्रमण जी के सान्निध्य में सम्पन्न वैज्ञानिक संगोष्ठी के सन्दर्भ में धर्म–दर्शन–विज्ञान शोध संस्थान के सचिव डॉ. नारायणलाल जी कछारा ने बताया कि जैन एज्युकेशन शोध अध्ययन केन्द्र लाडनूँ विश्वविद्यालय में प्रस्तावित हुआ है। उसमें गुरुदेव के शिष्य डॉ. नारायणलाल जी कछारा, डॉ. सोहनराज तातेड़, डॉ. अग्रवाल एवं डॉ. प्रेमसुमन जी विशेष रूप से सक्रिय रहेंगे। संगोष्ठी के पश्चात् भी जैन दर्शन–ज्ञान–विज्ञान का प्रचार प्रसार होता रहे इसके लिये उसके प्रायोगिकीकरण पर विशेष जोर दिया गया एवं हर साल संगोष्ठी का राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजन करने का निर्णय किया गया। आधुनिक दृष्टि से नई पीढ़ी, जैन–अजैनों के लिये सरल–सुबोध पद्धति से जैनधर्म की पुस्तकें प्रकाशित की जायेगी।

प्रो. प्रभात जी द्वारा ताम्रपत्र पर सृजित श्रुतस्कन्ध का आचार्य श्री ने विमोचन किया। प्रो. प्रभात जी ने बताया कि उन्हें लाडनूँ विश्वविद्यालय में ब्राह्मीलिपि के अध्यापन हेतु एवं यू.पी. के एक इंजीनियरिंग कॉलेज में भी आमन्त्रित किया गया है। उन्हें इन्दौर में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रशंसनीय लेख लिखने के कारण पुरस्कृत भी किया गया। ग्रन्थराज श्री जयधवला का ताम्रपत्र में प्रकाशन का कार्य भी प्रगति पर है। उनका पी.एच.डी. विषयक कार्य पूर्ण होने के बाद वे नवीन–नवीन शोध प्रबन्ध लिखने के लिये विषय देंगे एवं इन सबका क्रियान्वय करने के लिये गुरुदेव ने उन्हें आशीर्वाद दिया। डॉ. कछारा जी द्वारा रचित कृति The two innings of my life का भी विमोचन किया गया। उसकी एक–एक प्रति संघ को भेंट की गई। डॉ. अग्रवाल जी ने अपनी नवनिर्मित कृति समयसार का अंग्रेजी संस्करण संशोधन तथा उसके लिये

आशीर्वचन लिखने हेतु निवेदन किया। गुरुदेव ने गद्य–पद्यात्मक रूप से आशीर्वाद देकर उन्हें अभिभूत कर दिया। सभी शिष्यों को उनका कार्य एवं उपलब्धियाँ सतत बढ़ती रहे ऐसा शुभाशीर्वाद दिया। गुरुदेव द्वारा रचित गीतांजली काव्य साहित्य की मधुर कवितायें मुनिश्री सुविज्ञसागर जी गुरुदेव ने गाकर सभी विद्वानों को आत्मविभोर कर दिया।

आर्यिका सुनिधिमती

संघस्था – आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

मनोगत

परम पूज्य त्रिकाल स्मरणीय, आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आचार्य श्री ने दो वर्षों की अल्पावधि में लगभग 900 कविताओं का सृजन किया है। जिन विषयों के परिज्ञान के लिये दीर्घ परिश्रम एवं ज्ञानार्जन की आवश्यकता है, उन विषयों रूपी मणियों को आचार्य भगवन्त ने अत्यन्त सहज, सरल एवं सुगम शैली द्वारा कविताओं रूपी मालाओं में पिरोया है। इन कविताओं के माध्यम से सहस्रों ग्रन्थों के अनुभवात्मक रहस्य तत्त्व–जिज्ञासु सरलता से जान सकते हैं। राजनीति, कानून, विज्ञान, प्रकृति, अध्यात्म, न्याय, इतिहास, गणित आदि विभिन्न विषयों का समावेश इन कविताओं में किया गया है।

प्रस्तुत नारी गीतांजली में गद्यात्मक तथा पद्यात्मक शैली में नारी की गरिमा एवं पतित अवस्थाओं का सांगोपांग वर्णन किया गया है। मेरा विश्वास है कि स्वयं स्त्रियाँ भी स्वयं के विषय में इतना विस्तृत ज्ञान नहीं रखती हैं। स्वयं को अबला मानने वाली स्त्रियाँ इन कविताओं एवं लेखों के माध्यम से स्वयं का विकास करने में समर्थ हो सकती हैं, विकृतियों के त्याग से महिमामण्डित गौरवशालिनी बन सकती हैं।

आचार्य गुरुवर ने प्रस्तुत गीतांजली के दो लेख 1. जैनधर्म एवं नारी तथा 2. सर्वोदय लगभग 33 वर्ष पूर्व क्षुल्लक अवस्था में लिखे थे। इन लेखों को पढ़ कर गुरुदेव की साहित्यिक भाषा की प्रगल्भता तथा प्रखर प्रज्ञाशक्ति का परिज्ञान हो जाता है।

अल्पवय से अकल्पनीय प्रतिभा के धनी, ज्ञान–विज्ञान–अध्यात्मप्रेमी आचार्य गुरुवर के अनुभवों से सभी लाभान्वित हो – यही शुभभावना।

& vkf;dk lfo/k;erh